महाकवि गुलाब खण्डेलवाल

चुनी हुई रचनाएँ

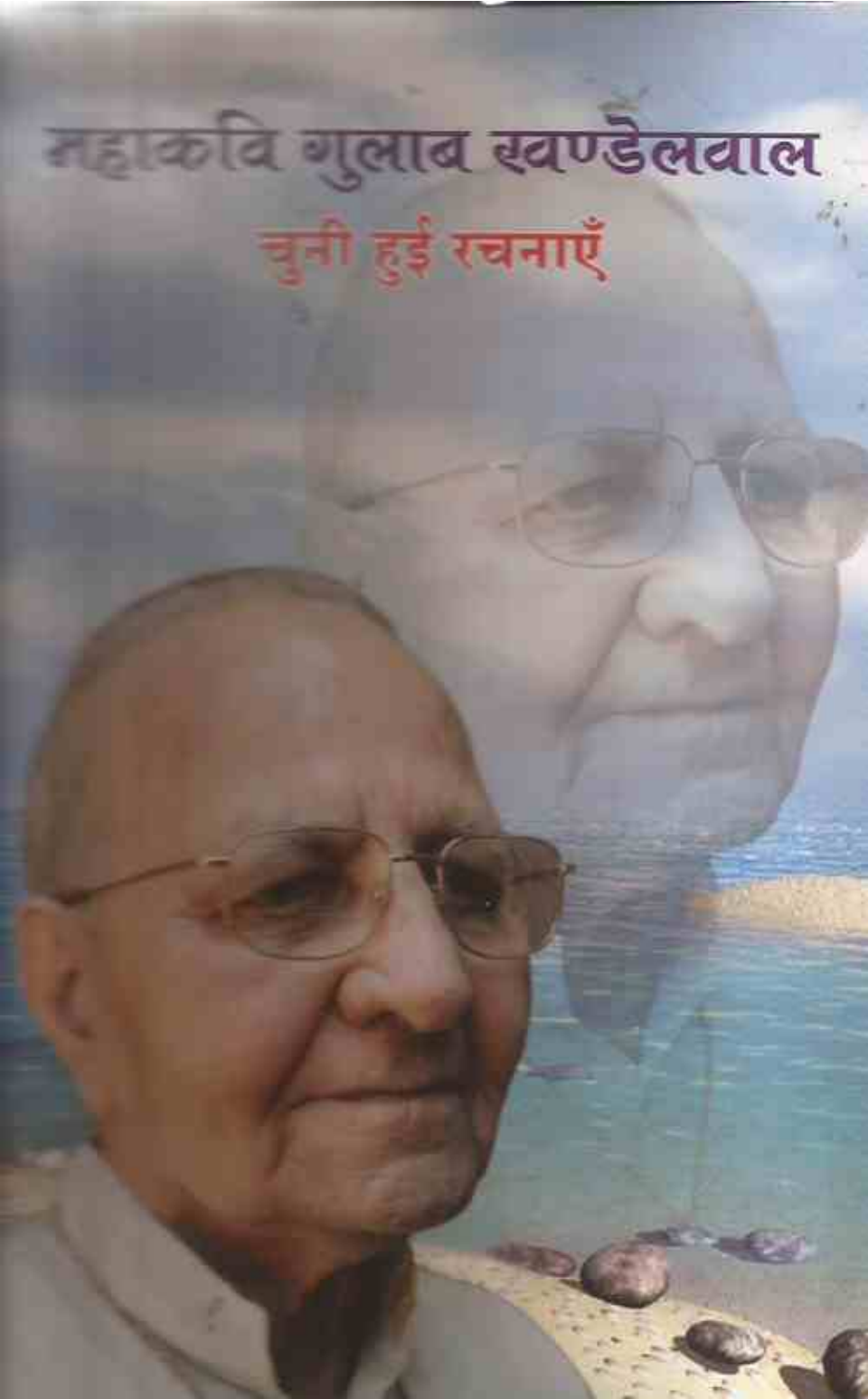

गुलाबजी के काव्य पर कुछ सम्मतियाँ

[illegible] है कि वे उसे रचनाएँ बना देते हैं। —मैथिलीशरण गुप्त

बहुत-सी रचनाएँ तो कविता की कोटि में आजाने से गुलाब की तरह अपने दल खोल चुकी हैं, [illegible] से उन्मद, [illegible] रही हैं। —निराला

मुक्तछंद कल्पना तथा गहन गंभीर अनुभूतियों का ऐसा अद्भुत सम्मिश्रण कम देखने को मिलता है। —सुमित्रानंदन पंत

गुलाबजी छायावाद-युग के कृती हैं, अतः उनकी रचना में शब्द भाव-सिन्धु की तरंगों के समान आते हैं।

— महादेवी वर्मा

गुलाब तरुणाई तथा सौंदर्य का कवि है। यौवन की रसीली भावनायें अनायास ही उसके भावों में फूट पड़ती हैं।

— कृष्णदेव प्रसाद गौड़ 'बेढब बनारसी'

गुलाबजी नैसर्गिक कवि हैं, इसलिए उन्होंने जीवन और प्रकृति के सूक्ष्म तंतुओं को समझा है, उन्हें अपने काव्य में उतारा है।

— रायकृष्णदास

आपकी प्रतिभा ने अनेक रूपात्मक विकास कर लिया है। आप हिंदी के परम समर्थ कवि हो गये हैं, इसमें किसी को किसी प्रकार का संदेह नहीं है। — विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

आप अपनी शैली के सम्राट हैं। — केदारनाथ मिश्र 'प्रभात'

रचनायें पढ़ने पर प्रायः ऐसा लगता है जैसे मेरे ही हृदय का एक टुकड़ा विधाता ने तुम्हारे अंदर रख दिया है। — बच्चन

सचमुच गुलाब नहीं, आप तो खिले गुलाब हैं। आपकी विशेषता है निरंतरता, कि आप बिना मुरझाये खिलते रहे हैं। इस महक को मेरा प्यार-दुलार पहुँचे। — कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

'शब्दों से परे' की कविताओं में गोचर से अगोचर की ओर एक प्रच्छन्न प्रस्थान है। कहीं-कहीं कवि का अन्तर्मन महाशून्य के द्वार पर दस्तकें देता हुआ दीख पड़ता है।

—डॉ. कुमार विमल

गुलाबजी के शिल्प में अकृत्रिम सौंदर्य है और अद्भुत चुस्ती के साथ बोलचाल का माधुर्य और प्रवाह है। विनय पत्रिका के तुलसी की तरह इनका कवि भी अपने प्रभु से साक्षात वार्ता करता सा प्रतीत होता है। — विष्णुकान्त शास्त्री

महाकवि गुलाब खण्डेलवाल
चुनी हुई रचनाएँ

(श्री खण्डेलवाल की सात दशकों की काव्य साधना में रचित गीत, दोहे, ग़ज़लें, चतुष्पदियाँ, शेर एवं सॉनेट में से चुनी हुई हिन्दी एवं अंग्रेजी की विशिष्ट रचनाएँ एवं कवि गुरु रवीन्द्रनाथ की कतिपय विशिष्ट कविताओं के काव्यानुवाद का संकलन)

महाकवि गुलाब खण्डेलवाल

चुनी हुई रचनाएँ

सम्पादक :
जुगलकिशोर जैथलिया

सह-सम्पादक :
महावीर प्रसाद बजाज

प्रकाशक :
श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय
१-सी, मदनमोहन बर्मन स्ट्रीट, कोलकाता-७०० ००७
टेलिफैक्स : (०३३) २२६८-८२१५
ई-मेल : kumarsabha@kumarsabha.org
वेबसाइट : www.kumarsabha.org

प्रकाशन समिति :

डॉ. प्रेमशंकर त्रिपाठी
श्रीमती दुर्गा व्यास
श्री अरुण प्रकाश मल्लावत

•

प्रथम संस्करण :

रथयात्रा २०७० वि.
(१० जुलाई २०१३ ई.)

•

११०० प्रतियां

•

मूल्य :

₹ २५०/-
$ 10 (विदेशों में)

•

ISBN - 978-81-902967-7-9

•

मुद्रक :

श्रीराम सोनी
हाईमेन कम्प्यूप्रिंट
२, रूपचंद राय स्ट्रीट, कोलकाता-७ (प.बं.)
मोबाइल : ९८३११३८०५०

Mahakavi Gulab Khandelwal : Chuni Hui Rachnayen
Edited by : Jugal Kishore Jethalia ₹ Price 250/-

विलक्षण काव्यप्रेमी, विद्वद्वर

आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री

की

भावभीनी पावन स्मृति

को

सादर समर्पित

घुटने न टेकना परिस्थिति के सामने
रावण से लड़कर सिखाया यही राम ने
मेरे मन-मतंग काल-नक्र से अधीर न हो
चक्रधर चतुर्भुज खड़े हैं तुझे थामने

— गुलाब खण्डेलवाल

— सम्पादकीय

श्री गुलाब खंडेलवाल हिन्दी की पुरानी पीढ़ी सर्वश्री बेढब बनारसी, हरिऔध, निराला, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, रायकृष्णदास, पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पं० नन्ददुलारे वाजपेयी, पं० सीताराम चतुर्वेदी एवं पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी जैसे दिग्गजों की परम्परा के ही साहित्यकार हैं। आपने सात दशकों से भी अधिक के अपने अप्रतिम लेखन से हिन्दी के भंडार को भरपूर समृद्ध किया है। हमारा यह सौभाग्य है कि नब्बे वर्ष की आयु में भी आज वे न केवल लेखन कार्य में सक्रिय हैं बल्कि मां सरस्वती के भंडार को नई-नई विधाओं से भरने में लगे हैं। अमेरिका में रहते हुए जहाँ एक ओर उन्होंने अंग्रेजी में भी उतनी ही सहजता से अपनी कलम चलाई है, वहीं दूसरी ओर कविगुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर की २०१२ ई. में सम्पन्न जन्म सार्धशती (१५०वीं जयन्ती) के उपलक्ष्य में उनकी कई प्रमुख कविताओं का हिन्दी रूपान्तरण करके अपनी श्रद्धा ज्ञापित की है। अनुवाद के क्षेत्र में यह उनका पहला एवं महत्त्वपूर्ण अवदान है। भारत के राष्ट्रगीत 'जन-गण-मन...' एवं बांग्लादेश के राष्ट्रगीत- 'आमार सोनार बांग्ला...' के अनुवाद भी इसमें शामिल हैं, जो कविगुरु की ही रचनायें हैं।

१९४१ ई. में मात्र सत्रह वर्ष की आयु में गुलाबजी के गीतों एवं कविताओं का 'कविता' नाम से पहला संग्रह महाकवि निराला की भूमिका के साथ प्रकाशित हुआ और तबसे उनके ५० से अधिक काव्यग्रन्थ और दो गद्य नाटक प्रकाशित हो चुके हैं, जिनका ग्रन्थावली के रूप में भी छह खण्डों में प्रकाशन हुआ है। प्रथम चार खण्डों का सम्पादन पद्मभूषण पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी एवं आचार्य विश्वनाथ सिंह ने तथा बाद के दो खण्डों का सम्पादन श्रीमती प्रतिभा खण्डेलवाल एवं विभा झालानी के किया है। इस पर भी सामान्य पाठकों के लिए उनकी चुनी हुई प्रतिनिधि

रचनाओं के छोटे संस्करण का अभाव साहित्य प्रेमियों को खटक रहा था। यह पुस्तक उसी की पूर्ति में एक छोटा सा प्रयास है।

इस पुस्तक में गुलाबजी की चुनी हुई देशभक्तिपूर्ण रचनाओं के साथ-साथ उनके विविधवर्णी गीत, चतुष्पदियाँ, सॉनेट, हिन्दी एवं उर्दू गजलें तथा शेर तो हैं ही, उनकी कुछ अंग्रेजी कवितायें एवं हाल ही में रचित कवीन्द्र रवीन्द्र की कतिपय महत्त्वपूर्ण कविताओं के हिन्दी भावानुवाद भी मूल बांग्ला कविताओं के साथ दिए गए हैं, जो प्रथमबार ही प्रकाशित हो रहे हैं। वाणी के वरद पुत्र महाकवि गुलाबजी के कालजयी साहित्य की बानगी इस पुस्तक के माध्यम से साहित्य प्रेमियों के सामने रखते हुए हम अत्यन्त हर्ष एवं गौरव का अनुभव कर रहे हैं। हमारा विश्वास है कि सुधी पाठक इससे निश्चित ही आह्लादित होंगे।

इन रचनाओं के चयन में गुलाबजी की सुपुत्री श्रीमती प्रतिभा खंडेलवाल ने हमें पूरा सहयोग दिया जिसके लिए हम उनके आभारी हैं। आशा है साहित्य जगत इस संकलन का समुचित स्वागत करेगा।

जुगलकिशोर जैथलिया
महावीर प्रसाद बजाज
सम्पादक

— प्रकाशकीय

श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय केवल पुस्तकालय एवं वाचनालय ही नहीं– विचारपरक संगोष्ठियों, साहित्यिक समारोहों तथा सत्साहित्य के प्रकाशन के कारण सारे देश में सुपरिचित है। पुस्तकालय के प्रकाशनों को सुधी पाठकों एवं साहित्य प्रेमियों का स्नेहाशीर्वाद सदैव प्राप्त हुआ है, यह गौरव की बात है। इसी क्रम में हिन्दी के वरिष्ठ एवं विशिष्ट कवि गुलाब खण्डेलवाल की चुनी हुई रचनाओं का प्रकाशन करते हुए हमें आन्तरिक प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है।

कुमारसभा पुस्तकालय से गुलाबजी का बहुत पुराना एवं आत्मीय सम्पर्क रहा है। इधर के वर्षों में संस्था के मंच पर उनका काव्य–पाठ एवं उनकी रचनाओं की सांगीतिक प्रस्तुति तो हुई ही है– आज से ६५ वर्ष पूर्व १९४८ ई. में पुस्तकालय द्वारा आयोजित एक कवि सम्मेलन में युवा कवि गुलाब खण्डेलवाल ने अपनी रचनाएँ सुनाकर कीर्ति अर्जित की थी।

'नहीं विराम लिया है / ज्यों–ज्यों दिवस ढल रहा मैंने चलना तेज किया है' पंक्तियों के कवि की काव्य–धारा आज ९० वर्ष की उम्र में भी प्रवाहित है, यह परम संतोष की बात है। हाल ही में कविगुरु रवि ठाकुर की बांग्ला कविताओं का प्रभावी अनुवाद कर गुलाबजी ने रचनात्मक सक्रियता एवं कविता के प्रति अपनी अदम्य निष्ठा प्रमाणित की है। इस वरिष्ठ गीतकार ने कभी लिखा था –

क्षीण हो रही काव्य की धारा
अवगाहन हित बन्धु ! तुम्हें मैं कब तक करूँ पुकारा।
गीत सहस्र, द्विशत हैं दोहे
नित नव ग़ज़ल वर्ष भर मोहे
अर्ध–सहस्र चौपदों को है, मैंने रचा सँवारा।

सॉनेट, गीति-नाट्य रसवाले
महाकाव्य दो-दो रच डाले
मुक्त छंद की विविध विधा ले, लिखते-लिखते हारा।
क्षीण हो रही काव्य की धारा।।

उपर्युक्त गीत की पंक्तियाँ कवि के रचनात्मक अवदान का स्वत: बयान करती हैं। इस एक गीत में कई संदर्भ एक साथ समाहित हैं। एक तरफ हिन्दी काव्य-साहित्य को, माँ भारती के भंडार को समृद्ध करने का कवि का गौरव-बोध लक्षित होता है तो दूसरी तरफ बढ़ती उम्र के कारण स्वर मंद होने की पीड़ा का संकेत भी है। इससे भी बड़ी पीड़ा है रसज्ञ पाठकों की निरन्तर घटती हुई संख्या।

हिन्दी कविता के विविध रूपों (गीत, ग़ज़ल, दोहा, मुक्तक, सॉनेट, गीति-नाट्य) पर साधिकार लेखन के साथ दो महाकाव्यों का सृजन तथा मुक्त छन्द की असंख्य रचनाएँ गुलाबजी की दीर्घ काव्य-साधना का प्रमाण हैं। संख्या ही नहीं गुणवत्ता की दृष्टि से भी उनकी कविताएँ चर्चित-प्रशंसित हुई हैं।

यों तो कविवर गुलाब खण्डेलवाल की पचास से अधिक काव्य कृतियाँ स्वतन्त्र रूप से एवं समग्र के रूप में सात जिल्दों में प्रकाशित हैं परन्तु पिछले कई वर्षों से सुधी पाठकों एवं काव्य-रसिकों की यह इच्छा रही है कि उनकी चुनी हुई लोकप्रिय कविताओं का एक लघु संकलन प्रकाशित हो। यह संकलन कुमारसभा पुस्तकालय द्वारा प्रकाशित हो, इस हेतु पुस्तकालय के मार्गदर्शक श्री जुगल किशोर जैथलिया के प्रस्ताव को गुलाबजी ने सहज ही स्वीकार किया तथा जैथलियाजी को ही संपादन एवं चयन का दायित्व भी प्रदान किया– इस हेतु हम पुस्तकालय की ओर से कवि के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं। रचनाकार के काव्य-वैविध्य की सुवास पाठकों को सुवासित कर सके, कविताओं के चयन में इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है।

कवि की यह आकांक्षा फलीभूत होगी तथा उसका 'अवगाहन हेतु आह्वान' अनुत्तरित नहीं जायगा– इसी विश्वास के साथ यह प्रकाशन सुधी पाठकों को समर्पित है।

डॉ. प्रेमशङ्कर त्रिपाठी, *अध्यक्ष*
श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय

गुलाब खंडेलवाल : व्यक्तित्व की एक झलक

महाकवि गुलाब खंडेलवाल प्रथम कोटि के साहित्यकारों की पंक्ति में अग्रणी हैं एवं पिछले पचास से अधिक वर्षों से भारत, कनाडा एवं अमेरिका जैसे देशों के साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक जीवन पर अपने लेखन एवं सामाजिक कार्यों के माध्यम से गहरी छाप छोड़ रहे हैं।

आपका जन्म अपने ननिहाल राजस्थान के नवलगढ़ नगर में २१ फरवरी १९२४ ई. को शीतल प्रसादजी एवं वासन्ती देवी के धार्मिक परिवार में हुआ। शीतल प्रसादजी के सबसे बड़े भाई सूरजूलालजी (रायसाहब) के कोई सन्तान नहीं होने से ये उनके गोद चले गए। इनके पूर्वज मूलत: शेखावाटी के मण्डावा के निवासी थे पर १८३० ई. के आसपास वे बिहार के गया नगर में आकर बस गए। गोद लेने के थोड़े दिन बाद ही रायसाहब का एवं इनकी जन्मदात्री मां का भी स्वर्गवास हो गया अत: इनका लालन-पालन इनके जन्मदाता पिता एवं दादी के हाथों ही हुआ। ये बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि के थे। आपकी प्रारंभिक शिक्षा गया नगर में हुई तथा १९४३ ई. में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से बी.ए. किया। इसके पूर्व ही फरवरी १९४१ ई. में आपका विवाह प्रतापगढ़ के सेठ रामकुमारजी की पुत्री कृष्णा के साथ हो चुका था। प्रभु कृपा से ये आज भी इनके साहित्य सृजन की सहयोगी बनी हुई है।

काशी के छात्र जीवन से ही इनका सम्पर्क सर्वश्री बेढब बनारसी, हरिऔध, मैथिलीशरण, निराला, बाबू संपूर्णानन्द, बाबू श्यामसुन्दर दास, पं. रामचन्द्र शुक्ल, रायकृष्ण दास, पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पं. नन्ददुलारे वाजपेयी, पं. कमलापति त्रिपाठी, पं. सीताराम चतुर्वेदी एवं पं. श्रीनारायण चतुर्वेदी प्रभृति से हुआ, जिससे इनके साहित्यिक संस्कार पल्लवित हुए। १९४१ ई. में इनके गीतों और कविताओं

का प्रथम संग्रह 'कविता' नाम से महाकवि 'निराला' की भूमिका के साथ प्रकाशित हुआ। तबसे अबतक इनके हिन्दी एवं अंग्रेजी के लगभग ६० ग्रन्थ आ चुके हैं एवं २०१० ई. तक की रचनाओं को समेटते हुए ७ जिल्दों एवं ६ खंडों में ग्रन्थावली भी प्रकाशित हो चुकी है। साहित्य की सभी विधाओं में लेखन हुआ है। आपके गीतों की संख्या एक हजार को भी लांघ चुकी है जिनमें करीब ८०० गीत तो विशुद्ध भक्ति के हैं, जो सहज भाषा में हैं एवं इनमें मानवता के चिरन्तन मूल्यों को उसीप्रकार की अभिव्यक्ति मिली है जैसे तुलसी के 'रामचरित मानस' में। शौर्य एवं श्रृंगार रस के दोहे, हिन्दी एवं उर्दू दोनो तरह की उच्चकोटि की ग़ज़लें, रूबाइयां एवं सोनेट ने भी गुलाबजी को विशिष्ट पहचान दी है। इधर अनुवाद के क्षेत्र में भी कविगुरु रवीन्द्र के प्रमुख गीतों से एक नई विधा की शुरूआत हुई है।

गुलाबजी की ६ पुस्तकें उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा और एक पुस्तक बिहार सरकार द्वारा पुरस्कृत हो चुकी है तथा प्रबन्ध काव्य 'अहल्या' हनुमान मन्दिर ट्रस्ट, कलकत्ता द्वारा पुरस्कृत किया गया है। आपका खंडकाव्य 'आलोकवृत्त' आज भी उत्तरप्रदेश के इंटर के पाठ्यक्रम में है। महाकाव्य 'उषा' एवं खंडकाव्य 'अहल्या' तथा 'कच देवयानी' भी बिहार एवं उत्तरप्रदेश के पाठ्यक्रमों में रही हैं। आप पिछले २२ वर्षों से अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन (प्रयाग) के अध्यक्ष हैं एवं इन्टरनेशनल हिन्दी समिति अमेरिका के भी अध्यक्ष हैं।

देश-विदेश में अनेक सम्मानों से आप विभूषित हो चुके हैं। हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा १९८९ ई. में 'साहित्य-वाचस्पति' की सर्वोच्च उपाधि से डॉ. रामकुमार वर्मा द्वारा सम्मानित किया गया, २००१ ई. में छोटीखाटू (राजस्थान) के हिन्दी पुस्तकालय के तत्वावधान में गुजरात के तत्कालीन राज्यपाल श्री सुन्दरसिंह भंडारी द्वारा 'पं. दीनदयाल उपाध्याय साहित्य सम्मान' से विभूषित किया गया एवं इसी वर्ष इटावा में श्री मुरारी बापू, उत्तरप्रदेश के तत्कालीन राज्यपाल आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री, पूर्व अटर्नी जनरल श्री शांति भूषण, उत्तरप्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री मुलायम सिंह यादव – चारों ने मिलकर गुलाबजी को सम्मानित किया, जिसपर मुरारी बापू ने कहा– 'आज धर्म, शासन, राजनीति एवं कानून ने एक साथ आपको सम्मानित किया है।' आपको काव्य सम्बन्धी उपलब्धियों के लिए १९८५ ई. में बाल्टीमोर नगर की मानद नागरिकता दी गई एवं ६ दिसम्बर १९८६ ई. में

अमेरिका की राजधानी वाशिंगटन में 'विशिष्ट कवि' के रूप में सम्मानित किया गया एवं उक्त दिवस को मैरीलैंड के गवर्नर ने सम्पूर्ण मैरीलैण्ड राज्य में तथा बाल्टीमोर के मेयर ने बाल्टीमोर नगर में 'हिन्दी दिवस' घोषित किया। वाशिंगटन में अमेरिका तथा भारत के संयुक्त तत्वावधान में २६ जनवरी २००६ ई. को भारत के गणतन्त्र दिवस समारोह में मैरीलैण्ड के गवर्नर द्वारा आपको 'कवि सम्राट' की उपाधि से अलंकृत किया गया। देश-विदेश के और भी अनेक सम्मानों से आप विभिन्न अवसरों पर सम्मानित हो चुके हैं।

गुलाबजी के साहित्य पर विभिन्न विश्वविद्यालयों में शोध निबन्ध लिखे जा चुके हैं एवं कई शोधकर्त्ताओं को पी-एच.डी. की उपाधि प्रदान की गई है। साहित्य सृजन एवं साहित्यिक संस्थाओं की गतिविधियों में लिप्त रहने के साथ-साथ गुलाबजी का विद्यार्थी काल से ही राजनैतिक गतिविधियों के साथ भी गहरा जुड़ाव रहा है। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के छात्रसंघ के चुनावों में सक्रिय भागीदारी की। स्वाधीनता के पश्चात् १९५० ई. में गया नगरपालिका के चुनावों में स्वीकृत राजनैतिक दलों को छोड़कर युवकों की नई पार्टी बनाकर मैदान में उतरे एवं कई दिग्गजों को पछाड़ कर स्वयं कमिश्नर बने एवं ११ अन्य भी इनकी पार्टी से चुने गए। अनेक उठा-पटक के तहत जलबोर्ड का कार्य सम्हालते हुए यश बटोरा एवं गया सहित बिहार की अनेक नगरपालिकाओं में गौवंश की हत्या बन्द कराकर अनशन पर बैठे स्वामी रामचन्द्र वीर की प्राण रक्षा की। १९६२ ई. में जिस समय राजनैतिक क्षितिज पर कांग्रेस की तूती बोलती थी, गया विधानसभा क्षेत्र से कांग्रेसी प्रत्याशी को शिकस्त देकर अपने मित्र पुराने क्रान्तिकारी निर्दलीय उम्मीदवार श्री श्याम वर्धवार को विजयी बनाया। आगे भी दस वर्ष तक सक्रियता बनी रही पर स्वयं विधायक का निर्वाचन लड़ते-लड़ते बच गए यह साहित्यिक क्षेत्र का सौभाग्य ही था। व्यवसायी घराने में जन्म लेने के कारण नाना प्रकार के व्यवसायों में भी समय-समय पर उलझे पर 'जैसे उड़ि जहाज को पंछी, पुनि जहाज पै आवै' की तरह प्रभु निर्देशित साहित्य क्षेत्र में ही रमते रहे, उसीका परिणाम है कि हिन्दी साहित्य की वृद्धि में इतना बड़ा योगदान दे सके।

आपके साहित्यिक अवदान के बारे में चर्चा करते हुए गुलाब ग्रन्थावली के सम्पादक वरिष्ठ साहित्यकार पद्मभूषण पं. श्रीनारायण चतुर्वेदी ने १९८७ ई. में

ग्रन्थावली की भूमिका में लिखा है- 'काव्य-साधना में काव्य की जो विविधता और कहीं-कहीं जो ऊँचाई देखने में आती है, वह आश्चर्य जनक है। यद्यपि आज का भौतिक और अर्थप्रधान युग काव्य के लिए न तो उपयुक्त है और न अनुकूल, फिर भी जिस प्रकार वसंत में कोकिल मदमस्त होकर आनन्द से कूजती है और इसकी परवाह नहीं करती कि उसे कोई सुन रहा है या नहीं, उसी प्रकार भौतिक युग और आर्थिक समृद्धि में रहते हुए भी श्री खंडेलवाल उसी कोकिल की तरह गान करते रहे हैं। रसिक अर्थात् कवि हृदय लोगों को उससे आनन्द मिला, कुछ ने 'वाह ! वाह !' किया किन्तु आत्म प्रेरणा के कारण ही वे कोकिल की तरह गाते रहे हैं। मैं रसिक या काव्य-मर्मज्ञ होने का दावा नहीं करता, किन्तु मुझे उनकी अनेक कविताओं से आनन्द मिला। मेरे लिए प्रशंसक होने के लिए इतना ही पर्याप्त है। खंडेलवालजी की कविताओं में अनेक ऐसी हैं जो यदि जनता में प्रचारित हो जाए तो वे बहुतों के कंठ में उतर सकती हैं और दीर्घजीवी होकर भावी काव्य प्रेमियों को आनन्द दे सकती है।'

९० वर्ष की आयु में आज भी उनकी साहित्य साधना अनवरत चल रही है। छायावाद चतुष्टय - प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी के बाद हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवियों में उनकी गणना होती है। •

अनुक्रम

देशभक्ति की कविताएँ /१

गीत /२१

क) भक्ति गीत

ख) काल–देश

ग) शृंगार

घ) विविध

चतुष्पदियाँ /६७

सॉनेट (चतुर्दशपदियाँ) /७३

हिन्दी ग़ज़ल /८७

उर्दू ग़ज़ल /१२१

फुटकर शेर /१२७

अंग्रेजी कविताएँ /१४७

रवीन्द्रनाथ : हिन्दी के दर्पण में /१५५

(कविगुरु रवीन्द्रनाथ की कतिपय विशिष्ट बांग्ला कविताओं का हिन्दी काव्यानुवाद)

देशभक्ति की कविताएँ

अनुक्रम

सरस्वती वंदना /३
जीवन सफल करो /३
मेरे भारत, मेरे स्वदेश /४
प्रयाण-गीत /६
विजय-प्रभात /७
आज हिमालय के शिखरों से... /८
हमने बचपन से चीनी के देखे... /१०
जननी भारत-धरणी /११
जागो भारतवासी /१२
जननी जीवनदायिनी /१३
सोनेवाले जाग /१४
हिमालय /१५
वीर भारती /१६

सरस्वती-वंदना

अयि मानस-कमल-विहारिणी !
हंसवाहिनी ! माँ सरस्वती ! वीणा-पुस्तक-धारिणी !

शून्य, अजान सिंधु के तट पर
मानव-शिशु रोता था कातर
उतरी ज्योति सत्य, शिव, सुंदर, तू भय-शोक-निवारिणी।

देख प्रभामय तेरी मुख-छवि
नाच उठे भू, गगन, चन्द्र, रवि
चिति की चिति तू कवियों की कवि, अमित रूप विस्तारिणी।

तेरे मधुर स्वरों से मोहित
काल अशेष शेष-सा नर्तित
आदि-शक्ति तू अणु-अणु में स्थित, जन-जन-मंगलकारिणी।
अयि मानस-कमल-विहारिणी ! •

जीवन सफल करो

जीवन सफल करो
करूँ आरती, मातु भारती ! चरण, चरण उतरो
फूले फेनिल जलनिधि-सा मन
कल्लोलित, हिल्लोलित यौवन
शारद हासिनि ! हे-नभ वासिनी, स्वर-आभरण धरो
तृण-तरु, चेतन, भू-नभ कविता
नखत रजत-अक्षर, रज सविता
अमृत-विलासिनि ! जगत-प्रकाशिनि ! जन-जन-मन विहरो
करुणामयि, शत-रूपिणि, धन्या
अंतर-छाया-ज्योति अनन्या
भव-भय-नाशिनि ! हृदय-हुलासिनि ! मंगल राग भरो
जीवन सफल करो। •

मेरे भारत, मेरे स्वदेश

तू चिर प्रशांत, तू चिर अजेय,
सुर-मुनि-वंदित, स्थित, अप्रमेय,
हे सगुण ब्रह्म वेदादि-गेय !
हे चिर-अनादि ! हे चिर-अशेष !

गीता-गायत्री के प्रदेश !
सीता-सावित्री के प्रदेश !
गंगा-यमुनोत्री के प्रदेश !
हे आर्य-धरित्री के प्रदेश !

तू राम-कृष्ण की मातृ-भूमि
सौमित्रि-भरत की भ्रातृ-भूमि
जीवन-दात्री, भव-धातृ भूमि
तुझको प्रणाम, हे पुण्य-वेश !

धूसर तेरा हिम-शुभ्र भाल
सिंहों के गढ़, पैठे शृगाल
असि उठा भवानी की कराल,
उठ, जगा, सो रहे क्यों महेश !

लक्ष्मण-रेखा कर चुका पार
दशशीश, बीस-भुज, महाकार
सीता भीता करती पुकार,
'हे राम, कहाँ रघुकुल-दिनेश !'

है आज मानसर काक-भुंज
कैलाश रहे भर असुर-पुंज
अहि-भेक-मलिन नंदन-निकुंज
अलका में फिरते स्वान-मेष

तेरे गांडीव-पिनाक कहाँ ?
शर, जिनसे सृष्टि अवाक्, कहाँ ?
धँस जाय धरा, वह धाक कहाँ ?
ओ साधक ! कर नयनोन्मेष

तू विश्व-सभ्यता-शक्ति-केंद्र
तुझमें विलीन शत-शत महेंद्र
नत विश्व-विजेता अलक्षेंद्र
तेरी सीमा में कर प्रवेश

तू मिटा न, शत साम्राज्य मिटे
कितने मंगोली राज्य मिटे
सीमांत युगल अविभाज्य, मिटे
मिट सकी न तेरी विभा लेश

द्वादश रवि तेरी भृकुटि क्रुद्ध
तू काल-रूप हनुमत प्रबुद्ध
कर आज शांति के लिए युद्ध
उठ जाग, जाग, ओ सुप्त शेष !

दे मसल, बढ़े जो चरण क्रूर
कर दे मतंग-मद चूर-चूर
हिमगिरि क्या ! उत्तर ध्रुव सुदूर
तेरी ध्रुव-सीमा हो अशेष

शत कोटि भुजाएं आज चपल
शत कोटि चरण, चिर-अडिग, अटल
हे अमर शक्ति के स्रोत सबल !
तू चिर-विमुक्त, हे मुक्त-केश !
मेरे भारत, मेरे स्वदेश ! ●

प्रयाण–गीत

मुकुट नगाधिराज का, झुका तनिक सँभाल दो
बढ़ो कि आज शत्रु को स्वदेश से निकाल दो

बढ़ो कि आज मोड़नी तुम्हें लहर अनंत की
बढ़ो कि आज तोड़नी, अनी दिगंत–दंत की

बढ़ो कि आज काल से जुझार रोपना तुम्हें
बढ़ो कि आज पाप को समूल तोपना तुम्हें

बढ़ो कि आज रावणी कलंक मेटना तुम्हें
बढ़ो कि आज, कुंभकर्ण को समेटना तुम्हें

बढ़ो कि आज छाँटनी भुजा सहस्रबाहु की
बढ़ो कि आज काटनी किरण मदांध राहु की

खड़ी महिष–विमर्दिनी नवीन मुंडमाल को
बढ़ो कि आज अस्थि से नवीन वज्र ढाल दो

सभीत केशरी कभी शृगाल के बरूथ में
बढ़ो कि गारुडेय ज्यों अजेय सर्प–यूथ में

उठा मरुत–सुती चरण समुद दहाड़ते चलो
असेतु शृंग–शृंग पर स्वकेतु गाड़ते चलो

कृपाण गंग–धार से विमुक्ति बाँटते चलो
कटे अराति–शीश से हिमाद्रि पाटते चलो

बढ़ो कि शत्रु देख ले कृशानु शंभु–भाल की
बढ़ो कि ज्योति खिल उठे स्वदेश के मशाल की

बढ़ो कि आज शत्रु की उठी भुजा उखाड़ दो
जटा उतार राक्षसी प्रशांत बीच गाड़ दो

समस्त विश्व साथ है, अमोघ सिद्धि हाथ है
बढ़ो कि चिर–अजेय यह उदद्रि स्वर्गमाथ है

निवास शंभु का यहाँ न काल का प्रवेश है
बढ़ो कि पंच स्रोत का अजेय यह प्रदेश है

अजेय विंध्य-मेखला, अजेय सिंधु-शृंखला
अजेय आर्य-भूमि यह अनंत शक्ति-संकुला

बढ़ो कि लोक में झुके ध्वजा न स्वीय नाम की
अजेय जन्मभूमि यह अशोक, कृष्ण, राम की

बढ़ी सतृष्ण जो इधर जयंत-दृष्टि फोड़ दो
बढ़ो कि आज बढ़ रही कलाइयाँ मरोड़ दो

मुकुट नगाधिराज का झुका तनिक सँभाल दो
बढ़ो कि आज शत्रु को स्वदेश से निकाल दो। •

विजय-प्रभात

हिमाद्रि देख डोलते, त्रिनेत्र नेत्र खोलते
मदांध बीसबाहु को, लिपट स्वशक्ति तोलते

सहस्र उर उबल पड़े, सहस्र पग मचल पड़े
समोद द्वार-द्वार से, सहस्र वीर चल पड़े

उठा प्रसुप्त देश था, प्रमाद का न लेश था
उठे नराच राम के कि रुद्र क्रुद्धवेश था

अपार सैन्य रावणी, विकीर्ण वारिवाह-सी
बढ़े सपूत देश के, अदम्य शूर, साहसी

उदग्र शृंग-शृंग से, उठी लपट भयावही
अराति*-चिह्न भाल से, मिटा चली मही-मही

उठा सदंभ शत्रुशीश भूमिसात् हो गया
धुली कलंक-कालिमा, विजय-प्रभात हो गया। •

* अराति = शत्रु

आज हिमालय के शिखरों से स्वतंत्रता ललकारती

आयी हिमगिरि लाँघ लुटेरों की टोली फुफकारती
चालिस कोटि सुतों की जननी, खड़ी अधीर पुकारती
आज हिमालय के शिखरों से स्वतंत्रता ललकारती
शीश चढ़ा दे जो स्वदेश पर, वही उतारे आरती

सोये अर्जुन भीम जग रहे, अब पांचाली जायगी !
जिसने आँख निकाली, उसकी आँख निकाली जायगी
छ्यासठ कोटि बढ़ी तो क्या, यह चीनी चाली जायगी
बना चासनी हिंद महासागर में डाली जायगी
भारत-भाग्य-भवानी जागी आज असुर संहारती

अंगद पग धर हुए हमारे सैनिक खड़े पहाड़ पर
पार हिमालय के कूदें जो पल में अभी दहाड़कर
बढ़ते बिना विराम तिरंगे ध्वज पेकिंग तक गाड़कर
इस चीनी अजगर के रख दें सारे दाँत उखाड़कर
जिनके साहस, शक्ति, शौर्य पर, जननी तन-मन वारती

अत्याचारी से दुर्बल को, शरणागत को ओट दी
साक्षी है इतिहास, न हमने कभी किसी पर चोट की
देखा किए ध्वंस तिब्बत का, मन में बड़ी कचोट थी
आज पाप का घट आ पहुँचा, सीमा पर विस्फोट की
वही रक्त की बूँद-बूँद बन हनूमान हुंकारती

साठ हजार सगर-पुत्रों की सैन्य जुटी तो क्या हुआ !
भूल गये जब खुली कपिल मुनि की त्रिकुटी तो क्या हुआ !
रेखा-रक्षित लुटी राम की पर्णकुटी तो क्या हुआ !
पूछो स्मर सेद्ध 'शांत त्रिनेत्र-समाधि छुटी तो क्या हुआ?'
बस मुट्ठी भर राख दिखी थी दक्षिण-पवन बुहारती

आज बँधी मुट्ठी-सा कसकर सारा भारत एक है
एक हमारी भारतीयता, एक हमारी टेक है
धर्म-धुरी, रथ-अभय, सारथी-साहस, सखा विवेक है
गति गंगा की धार हमारी, छेक सकेगा भेक है !
यह पीली आँधी निष्फल चट्टानों पर सिर मारती

हम अगस्त्य-सुत, सप्त सिंधुओं को पी जाते घोलकर
भौंह हमारी लीक खींच देती भूगोल-खगोल पर
बढ़ जाते हम तोपों के मुँह पर निज सीना खोलकर
दे सकते हैं रक्त हिमालय के बदले में तोलकर
हम उनकी संतान, वीरता जिनके चरण पखारती

सुर-मुनि-पूजित भूमि अमर यह, हिमगिरि जिसका भाल है
विंध्याचल-मेखला, चरणतल धोता जलधि विशाल है
शांत-सौम्य, चिर-तपस्विनी यह, क्रुद्ध हुई तो काल है
ढाल शांति की, स्वतंत्रता की चिर-प्रज्वलित मशाल है

जय जग-जननी, असुर-मर्दिनी, जय भारत, जय भारती
आज हिमालय के शिखरों से स्वतंत्रता ललकारती
शीश चढ़ा दे जो स्वदेश पर वही उतारे आरती। ●

हमने बचपन से चीनी के देखे बहुत खिलौने हैं

सुप्त सिंह के मस्तक पर चूहे ने चरण चढ़ाया है
आज हिमालय के देवालय में शृगाल घुस आया है
रवि के ज्योतिर्मय आनन पर पड़ी राहु की छाया है
चली सत्य से लोहा लेने, छल, प्रवंचना, माया है

बंधु-भाव दिखला जिसने पहले तिब्बत की भू छीनी
बढ़ा लीलने फिर विषधर-सा हिम-शिखरों की रंगीनी
भुला-निखिल प्राचीन सभ्यता, सीख, शांति-रस की भीनी
गुरु को गुड़ कह, आज वही चेला बनने आया चीनी

आया है तो अब थोड़ा पीले गंगा का पानी तू
भारत की मृत्तिका सूँघ ले राम नाम अभिमानी तू
सोये ज्वालामुखियों पर करता आया मनमानी तू
महानाश की फसल काट अब सुन विनाश की वाणी तू

सुन, समवेत स्वरों में उठ क्या भारत सारा कहता है
अत्याचारी का उन्मूलन धर्म हमारा कहता है
धूमकेतु ! तू ठीक स्वयं को लाल सितारा कहता है
आज तुझे जग शांति-सभ्यता का हत्यारा कहता है

यह धरती है रामकृष्ण की, भीमार्जुन-से वीरों की
अब भी छायी स्वर्गलोक तक चर्चा जिनके तीरों की
तिब्बत का न पठार, चांग की फौज न यह शहतीरों की
अरे, हटा ले पाँव, भूमि यह हिमगिरि के प्राचीरों की

यह परिवेश समुद्रगुप्त का, यह शकारि का साका है
राणा का चित्तौड़ लड़ाका, गढ़ यह वीर शिवा का है
गुरु गोविन्द सिंह का प्यारा, यह रण-मंदिर बाँका है
यह सुभाष की स्वर्ण-कीर्ति, गांधी की विजय-पताका है

शांत, सहिष्णु देश यह जितना, उतना उग्र, प्रबल भी है
हिमगिरि में शीतलता जितनी उतना तरल अनल भी है
तू समुद्र तो हम अगस्त्य, शिव हम तू अगर गरल भी है
ब्रह्मपुत्र का जल यह तेरी जन-संख्या का हल भी है

सिंहों की यह माँद कि जिसमें घुस आये मृगछौने हैं
आज चाँद को छूने आये बाँह उठाये बौने हैं
हिम की चट्टानों के नीचे, आ जा, बिछे बिछौने हैं
हमने बचपन से चीनी के देखे बहुत खिलौने हैं। •

(चीन के भारत पर आक्रमण के दिन, २० अक्टूबर, १९६२ को लिखित)

जननी भारत-धरणी

जननी भारत-धरणी
षड्ऋतु-नंदित, सुर-मुनि-वंदित, त्रिभुवन-मन-हरणी।
रवि-कर-चंचल, मलयज-अंचल, करुणा-मूर्ति बनी
नत-भ्रू-वर्जित, पद-तल-गर्जित, लहरें सिंह-स्वनी
विलसित-राका-कुसुम-बलाका, हरित-हरित-वर्णी
हिमगिरि-कलसी, खसित कमल-सी, शत-शत निर्झरणी
केतु तिरंगा, सित स्वर्गंगा, संध्या-ज्योतिसनी
हरित शिखर पर, त्वरित बिखरकर, नभ के बीच तनी
गुंजित-वीणा, शोभासीना, वेदी पर अपनी
छवि-मधु-चर्चित, कवि-जन-अर्चित, चिर-पुराण, नवनी
जननी भारत-धरणी
षड्ऋतु-नंदित, सुर-मुनि-वंदित, त्रिभुवन-मन-हरणी। •

जागो भारतवासी !

तुम्हें पुकार रहा हिमगिरि से, मैं जय का विश्वासी
जागो हे युग-युग के सोये, खोये भारत-वासी !

जागो हे चुपचाप चिता पर, मरने के अभ्यासी
जागो हे जागरण-विभा से, डरने के अभ्यासी
जागो हे सिर झुका याचना करने के अभ्यासी
जागो हे सब कुछ सह, चुप्पी धरने के अभ्यासी

जागो हे छायी है जिनके मुख पर पीत उदासी
जागो हे जीवन-सुख वंचित, वीत-राग संन्यासी !

तुम्हें जगाने को मैं अपनी छोड़ अमर छवि आया
अग्नि-किरीट पहन सुमनों की नगरी से रवि आया
यौवन का संदेश लिये सुंदरता का कवि आया
उद्धत-शिखरों पर ज्यों नभ से टूट प्रबल पवि आया

जनता के जीवन में आया, मैं मधु-स्वप्न-विलासी
सिसक रही सुकुमार कल्पना, वह चरणों की दासी

मेरे गीतों में नूतन युग पाँखे खोल रहा है
मेरी वाणी में जनता का जीवन बोल रहा है
मेरे नयनों में भविष्य का मानव डोल रहा है
मेरे कर पर विश्व विहग-सा कर कल्लोल रहा है

मेरी कविता में हँसती है, नूतन ज्योति उषा-सी
अँगड़ाई ले जाग रही धरणी नव-परिणीता-सी

अरुण कली-सा मुख, नत ग्रीवा, श्याम अलक, भुज गोरे
बंधन आज नहीं कज्जल नयनों के अरुणिम डोरे
आज हृदय में नव जीवन-सागर ले रहा हिलोरें
नारी सहधर्मिनी आज फिर कौन किसे झकझोरे !

वह न पराजय कभी मिली जो तुम्हें विजय-प्रतिमा-सी
प्रेम सहज अधिकार तुम्हारा, ओ जीवनाभिलाषी !

मानवता चल रही सम्मिलित आज बढ़ा पग अपने
आज सत्य होते जाते हैं, कल के कोरे सपने
झुकता लो आकाश तुम्हारे पद-चिह्नों से नपने
आज नहीं दूँगा मैं तुमको रोने और कलपने

मेरी बाँहें आज रहीं नव संसृति को अकुला-सी
उठो अमृत-संतान ! तुम्हारी जननी भूखी-प्यासी
तुम्हें पुकार रहा हिमगिरि से, मैं जय का विश्वासी
जागो हे युग-युग के सोये, खोये भारतवासी ! •

जननी जीवनदायिनी

जननी जीवनदायिनी
जगत्-प्रकाशिनि ! शारद-हासिनि ! भक्ति-प्रेम-रस-पायिनी !
किरण-मंडिता, उपल-खंडिता, पाप-कलाप-नशायिनी
गिरि-उत्संगा, क्रीड़ित-गंगा, रज-धूसर-काषायिनी
देश-वर्ण-शत, रचित पर्ण-वत्, मधुऋतु-शय्या-शायिनी
अरुण-वंदिता, छवि अनिंदिता, मंद-मंद स्मिति-ध्यायिनी
ज्योति अनिर्वच, भू-विकीर्ण-कच-लता श्याम-प्रच्छायिनी
अनवगुंठिता, इषत्-कुंठिता, त्रिभुवन-भाग्य-विधायिनी
तृण-रोमावलि, सागर-अंजलि-अर्चित-कलि-कुसुमायनी
गुंजित-गीता, पिये पुनीता, सीता-राम-रसायनी
जननी जीवन-दायिनी
जगत्-प्रकाशिनि ! शारद-हासिनि ! भक्ति-प्रेम-रस-पायिनी ! •

शौर्य गीत

सोनेवाले जाग !

पूरब-पश्चिम दोनों दिशि से उमड़ रही है आग
घर में अर्गल लगा, शांति से सोनेवाले जाग !

जिसे सभ्यता, शांति, स्नेह का पाठ पढ़ाया तूने
भाई कहकर बड़े प्रेम से गले लगाया तूने
जिसे तुष्ट करने युग-युग का स्वत्व लुटाया तूने
छोड़ दिया हिम-मंदिर सुंदर सजा-सजाया तूने
आज एशिया का वह दानव रहा नयी बलि माँग

ताजमहल, एलोरा और अंजता की दीवारें
यह लहलही फसल खेतों की, केसर के फव्वारे
ये माँगल, भाखरा, नये मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे,
माना, तूने निज शोणित से ये सब रचे, सँवारे
विफल न पर हो जाय कहीं यह सारा ही तप-त्याग

सिर देकर ही स्वतंत्रता का मूल्य चुकाना पड़ता
तलवारों पर चढ़कर ही इस घर में आना पड़ता
पल-भर सोये जहाँ वहीं इतिहास पुराना पड़ता
एक चूक के लिए पीढ़ियों तक पछताना पड़ता
लाख आँसुओं से न धुलेगा फिर धरती का दाग

आधी आग बुझेगी, ज्यों ही तू कुछ करवट लेगा
पहले तलवारों पर पानी चढ़े, बाग़ पट लेगा
प्रथम करेगा वार न तू, सन्मुख मंगल-घट लेगा
फिर भी आकर जिसको बरबस कटना है, कट लेगा
रण होगा तो चंडी का भी देना होगा भाग

निज बल का आधार न जिनको, पर के बल जीते हैं
अपमानित भी विवश, खून का घूँट वही पीते हैं
भय के बिना न प्रीति, शक्ति के बिना न्याय रीते हैं
मानव की वन्यावस्था के दिन न अभी बीते हैं
क्षीण-कंठ तू गा न सकेगा कभी शांति का राग

पूरब-पश्चिम, दोनों दिशि से उमड़ रही है आग
घर में अर्गल लगा, शांति से सोनेवाले जाग। ●

हिमालय

आयेगा नहीं काम सदाशय अपना
गांडीव सँभालो कि रहे भय अपना
अब वृद्ध हुआ मांग रहा सेवा-मुक्ति
प्रहरी जो सदा से था हिमालय अपना।

तातार कि शक हूण जो आये चढ़के
सब दूर उड़े पत्र सदृश पतझड़ के
सौ बार हिमालय ने बचाया है तुम्हें
अब तुम भी हिमालय को बचालो बढ़के। ●

वीर भारती

धौंस दिखा, पुट्ठे चढ़ा, आँखें खूब तरेर,
जब तक सुप्त मृगेंद्र है, गीदड़ ! तू ही शेर

२

मरने पर भी दूर से, शत्रु ले रहा टोह
उँगली घोड़े[1] पर चढ़ी, देख चढ़ी ही भौंह

३

मिट्टी छुटी न पाँव से, कर से रैफल-मूठ
दृष्टि न अरि के वक्ष से, प्राण गये बस छूट

४

इस रण-गंगा में धँसे, बढ़े चलो सोल्लास
पार हुए कैलास है, डूब गये कैलास

५

अश्रु बहाते कुछ चले, कुछ निकालते खीस
बड़भागी जो देश पर, चढ़ा चले निज शीश

६

हर कंधे पर सिर धरा, हर सिर में दो आँख
जिया वही जो देश-हित, यों तो जीते लाख

७

यह सँकरीला घाट है, दो असि एक न म्यान
आन धरो तो सिर नहीं, सिर जो धरो, न आन

८

साठ बरस वायस जिये, अहि शत, कूर्म हजार
चढ़ा तड़ित के अश्व पर, वीर जिये दिन चार

---

१. बंदूक छोड़ने के खटके को घोड़ा कहते हैं।

९

सौ बारी रोगी मरे, भोगी मरे हजार
लाख बार कायर मरे, वीर एक ही बार

१०

मरे न कविता रसमयी, मरे न सत्य विचार
रण में मरे न सूरमा, उठ-उठ करे हँकार

११

रण शय्या ही फूल की, व्रण-आभरण हजार
वीरों की तो ब्याहता, सानधरी तलवार

१२

तन हारा, फिर भी नहीं, मन ने मानी हार
शिरस्त्राण उतरा नहीं, सिर दे दिया उतार

१३

प्राणांतक पीड़ा हुई, मरने पर ही ज्ञात
पहले रण की बात की, पीछे व्रण की बात

१४

जलते उल्का-पिंड का, परिचय किसको ज्ञात !
सिंहों का क्या गोत्र है ! वीरों की क्या जात !

१५

चढ़ें शत्रु के शीश पर, या चढ़ चलें विमान
या तो जय, या देह-क्षय, यही हमारी आन

१६

प्रिय को रण के हित सजा, बोली प्रिया कि नाथ !
मिलना अरि-पुर जीत कर, या सुरपुर में साथ

१७

जन-रव सुन नाचे नटी, घन-रव सुनकर मोर
रण-रव सुनकर सूरमा, नाचे हर्ष-विभोर

१८

धन्य जिन्होंने प्राण दे, रख ली माँ की शान
शीश कटे पर भी रहे, ऊँचा किये निशान

१९

समर-मरण, फिर देश-हित, बोला वीरक्ष 'न सोच
एक बार ही दे सका, प्राण, यही संकोच'

२०

अंग-अंग छलनी बने, फिर भी रुकी न साँस
भौं में तेवर देखकर, मृत्यु न आती पास

२१

देख मरण ध्रुव भी नहीं, पलटा वीर-स्वभाव
तिल-तिलकर कटता रहा, तिल भर हटे न पाँव

२२

वीर एक ही सुत भला, कायर नहीं हजार
सिंह एक रण जीतता, स्यारों की न कतार

२३

जननी बोली पुत्र से, 'रखना माँ की लाज
दूध सिंहनी का पिया, लड़ दिखलाना आज'

२४

रण को सज बोली प्रिया, 'प्रिय ! मत करें विचार
लीक न यह सिंदूर की, शीश टँगी तलवार'

२५

लौटूँगा रण जीतकर, या दूँगा तन वार
कंठ-प्रिया-भुज-वल्लरी (कि) कंठ लगे तलवार

२६

घन की शोभा तड़ित से, वन की शोभा मोर
रण की शोभा वीर के असि की धार कठोर

२७

वीर वही, वक्ता वही, पंडित वही सुनाम
जिये देश के काम में, मरे देश के काम

२८

दाँव देख घर में घुसे, दुबक पसारे पाँव
नींद ठगे, जागे भगे, चीनी, चोर, बिलाव

२९

कंचन=किंचन कुछ नहीं, बोला वीर निढाल
चुटकी धूल स्वदेश की, देना मुख में डाल

३०

जिस मिट्टी ने तन दिया, जिस मिट्टी ने प्राण
उस मिट्टी-हित मर सकूँ, दो, प्रभु ! यह वरदान

३१

घर में बाँबी साँप की, छप्पर अग्नि-झकोर
शत्रु घुसे सीमांत में, कब जागेगा और !

३२

रण-हिंसा हिंसा नहीं, वीर अहिंसा-धाम
गीता देकर कृष्ण ज्यों, सीता लेकर राम

३३

कायर तट पर मंत्र पढ़, चढ़ा रहे दधि, दूब
लाया मोती छीनकर, वीर सिंधु में डूब

३४

धौंसे की धमकार सुन, रुका न वीर निमेष
'या तो लूँगा शत्रु-पुर या सुरपुर नि:शेष'

३५

न्यौछावर जिस एक पर, धन, दारा, सुत, गेह
कीर्ति बचायी वीर ने, नहीं बचायी देह

३६

द्रोण, भीष्म, अर्जुन कहाँ ! कहाँ कर्ण का गेह !
कीर्ति न मरती वीर की, मरती केवल देह

३७

चले खड्ग की धार पर, असि-छाया विश्राम
इतिहासों के पृष्ठ पर, खुदा हमारा नाम

३८

बीच न टिकने की जगह, या इस या उस पार
सान धरो तलवार पर कि म्यान धरो तलवार

३९

घूँटी में ही सीख यह, 'मरें की लौटें मार'
सिंहों के हित कब खुले बन में शिक्षागार !

४०

रण-रव सुन बोली प्रिया, ग्रीवा फेर कृपाण
'ऐसी लट का क्या करूँ, लटका प्रिय का ध्यान !'

४१

गंगा बड़ी न गोमती, सरयू के भू-भाग
जहाँ गिरा सिर वीर का, तीरथ वही प्रयाग

४२

शांति-क्रांति, रति-विरति की भू यह भारतवर्ष
कुसुमादपि सुकुमार है वज्रादपि दुर्धर्ष

४३

'सिर काटे ही सिर रहे, सिर रक्खे सिर जाय'
जैसे कलम गुलाब की बढ़े न अन्य उपाय

४४

अंग-अंग कटकर गिरें, मृत्यु खड़ी हो वाम
मातृभूमि तब भी रहे, मुख पर तेरा नाम

४५

जहाँ वीर के रक्त की गिरी बूँद भी एक
शीश झुकाते देव भी उस धरती को देख

४६

पुत्रवती युवती वही जिसके पय की धार
गंगा बनी स्वदेश-हित, गयी सप्त कुल तार

४७

जब तक कढ़े न मूलतः सुख की कढ़े न साँस
शत्रु घुसे सीमांत में (कि) घुसी दाँत में फाँस

४८

मेघ न सरित न सर यहाँ, उड़ती धू-धू रेत
पानी धन्य कृपाण का, सदा हरे हैं खेत •

गीत

क) भक्ति गीत

ख) काल-दंश

ग) शृंगार

घ) विविध

अनुक्रम

भक्ति गीत

सब कुछ कृष्णार्पणम् /२५
किसने जीवन दीप जुगाया /२६
नहीं यदि तू भी दया करेगा /२६
मार्ग अनदेखा, लक्ष्य अजाना /२७
मुझे तो वही रूप है प्यारा /२७
नहीं कभी भागूँगा जग से /२८
हमने नाव सिंधु में छोड़ी /२८
कृपा का कैसे मोल चुकाऊँ /२९
कहाँ है, ओ अनन्त के वासी /२९
मार्ग कैसा भी बीहड़ आये /३०
नहीं यदि तेरा मिले सहारा /३०
कहाँ इस रथ पर आड़ लगाऊँ? /३१
चला मैं सदा लीक से हटके /३१
तेरी लीला की बलिहारी /३२
नाथ ! क्या दोगे यह अवकाश /३२
भले ही सारा जग मुँह फेरे /३३
दृष्टि के आगे से मत हटना /३३
मेरी नाव /३४
नाथ! तुम जिसको अपना लेते /३४
क्यों तू दुख से वृथा डरे /३५
मैंने जब-जब ठोकर खाई /३५
बता दे, क्या लूँ मैं क्या छोड़ूँ /३६
तुमने वंशी तो दी कर में /३६
कुछ भी बदले में नहीं लेना है /३७
अब क्या मागूँ आगे /३७
जीवन तुझे समर्पित किया /३८
जब सोते से जागूँगा /३८
वृथा ही तू क्यों जूझ मरे /३९

खेल लेने दो मन के दाँव /३९
बरसो! हे करुणा के जलधर /४०
कैसे तेरे सुर में गाऊँ /४०
यदि मैं चित्र न देखूँ तेरे /४१
मन का यह विश्वास न डोले /४१
प्रार्थना यदि न तुझे छू पाती /४२
सातों सुर बोलेंगे /४२
मेरे अन्तर में छा जाओ /४३
करूँ क्या, ई यदि मन... /४३
बाँधकर नियमों से जग सारा /४४
क्यों तू मरे व्यर्थ चिन्ता से! /४४
आया चरण-शरण में /४५
जीते न्याय प्रार्थना हारी /४६
तुझसे, नाथ ! और क्या मांगू /४६

काल दंश

सब कुछ छोड़ चला बनजारा /४७
जो भी पाये खोना है /४७
हम सब खेल खेलकर हारे /४८
जग में चलाचली के मेले /४८
हमारे वे दिन बीत गये /४९
विदाई /४९
कितने बंधु गये उस पार /५०
तूने जो बोये सो काटे /५०
जीवन यों ही बीत गया /५१
शत नमन तुझे ओ महाकाल /५१
कागज की नाव /५२

शृंगार

जब भी नाम हमारा आये /५३
मुझे भर लेती है बाँहों में /५३
जब यह जीवन फिर पायेंगे /५४
जीवन गाते-गाते बीते /५४
कब आये मधुर घड़ी /५५
अयि सघन-घन-कुंतले /५५
एक दिन वांसती संध्या में /५६
होली-गीत /५६

विविध

सुरों के बंधन मैंने खोले /५७
जीवन फिर-से भी यदि पाऊँ /५७
मुरली कैसे अधर धरूँ /५८
कोई राधा से कह देता /५८
तुमने अच्छी प्रीत निभायी /५९
नाथ ! क्या राधेश्याम कहाये /५९
जिनका नाम लिए दुख भागे /६०
स्वामी! यह क्या मन में आया /६०
अवध में कैसे पाँव धरूँ /६१
नहीं भी लौट अवध में जाये /६१
विरह ही अंतिम सत्य भूवन का /६२
नाथ जब सरजू लेने आई /६२
अहल्या के उद्धार का प्रसंग /६३

•

नहीं विराम लिया है

नहीं विराम लिया है
ज्यों-ज्यों दिवस ढल रहा, मैंने चलना तेज़ किया है
तम की इस अनंत घाटी में
क्या यदि चले तेज़ या धीमे !
बस पद-चिह्न एक धरती में, मैंने बना दिया है
ज्ञान-भक्ति की लेकर गागर
जो युग-युग से बैठे पथ पर
श्रद्धा की अंजलि फैलाकर, उनसे अमृत पिया है
महाशून्य में लय भी होकर
क्या न बचा लूँगा सब खोकर
मैंने जो हँसकर या रोकर, जीवन यहाँ जिया है !
नहीं विराम लिया है ! •

सब कुछ कृष्णार्पणम्

सब कुछ कृष्णार्पणम्, सब कुछ कृष्णार्पणम्
ज्ञान-ध्यान, शक्ति-श्रम
राग-द्वेष, मोह-भ्रम
दाह, दीनता, अहम्
सब कुछ कृष्णार्पणम्
भोग-योग, यम-नियम
श्रेय, प्रेय, प्रेयतम
लाभ-हानि, सम-विषम
सब कुछ कृष्णार्पणम्
भव-विभव, अधिक कि कम
शिव-अशिव, शुभाशुभम्
प्राप्त जो अगम, सुगम
सब कुछ कृष्णार्पणम्
सत्, असत्, अहम्, इदम्
वृत्ति उच्च या अधम
सुंदरम्, असुंदरम्
सब कुछ कृष्णार्पणम्
व्यर्थ जन्म-मृत्यु-क्रम
ईति-भीति, त्रास-तम
रोग-शोक, दुख चरम
सब कुछ कृष्णार्पणम्
भेद बुद्धि के अलम्
जप-तप, आगम-निगम
मंत्र अब यही परम
सब कुछ कृष्णार्पणम्
पाँव क्यों न जायँ थम
मार्ग चल रहा स्वयम्
मुक्त, आज मुक्त हम
सब कुछ कृष्णार्पणम्। ●

किसने जीवन-दीप जुगाया

किसने जीवन-दीप जुगाया !
मेरे मस्तक पर थी किसके स्नेहांचल की छाया !

जब भी महाकाल ने अपने जबड़ों को फैलाया
किसका था वह हाथ सदा जो आड़े-आड़े आया !
अपना ही प्रतिबिंब, मोह, भ्रम, स्वप्न कहूँ या माया
मैंने प्रतिपल निज प्राणों पर परस किसीका पाया
कौन अनल-सागर से तृण की तरी पार कर लाया
किसके बल झंझा से लड़ती रही ज्योति कृशकाया !
किसने जीवन-दीप जुगाया !
मेरे मस्तक पर थी किसके स्नेहांचल की छाया ! ●

नहीं यदि तू भी दया करेगा

नहीं यदि तू भी दया करेगा
तो फिर इस जलते जीवन की पीड़ा कौन हरेगा
काम-क्रोध-मद-लोभ-मोह हैं प्रतिपद घेरा डाले
मुझको भटकाने के तूने कितने मार्ग निकाले !
सहज स्वभाव यही शिशु का तो, तिरछे पाँव धरेगा

इन्द्र-कुबेर-मरुत-पावक-जल तेरे जड़ अनुचर हैं
भले-बुरे के ज्ञान-रहित, नियमों के पालक भर हैं
इनका बस चलते तो कोई पापी नहीं तरेगा

तेरी क्षमा बड़ी है मेरे कर्मों के बंधन से
शाप-ताप सब धुल जायेंगे अश्रु-सजल आनन से
जब तू मेरा क्रंदन सुनकर धरती पर उतरेगा
नहीं यदि तू भी दया करेगा। ●

मार्ग अनदेखा, लक्ष्य अजाना

मार्ग अनदेखा, लक्ष्य अजाना
जीवन क्या है, चलते जाने का बस एक बहाना
धरती चलती, अंबर चलता, चलते चाँद-सितारे
कोटि-कोटि ब्रह्मांड चल रहे हैं ये बिना सहारे
जाने कहाँ पहुँचने का इन सबने मन में ठाना !
खींचे कहाँ लिये जाते हैं मुझे क्षीण ये धागे ?
एक द्वार खुलते ही दिखते द्वार सहस्रों आगे
किसने बिछा दिया सम्मुख यह अद्भुत ताना-बाना !
चक्कर में है बुद्धि, चेतना थककर बैठ गयी है
चिर-पुराण हेकर भी मेरी यात्रा नित्य नयी है
चालक को तो क्या, मैंने निज को न अभी पहचाना
मार्ग अनदेखा, लक्ष्य अजाना। •

मुझे तो वही रूप है प्यारा

मुझे तो वही रूप है प्यारा
जब रथचक्र उठा तुमने कौरव-दल को ललकारा
मन तो राधा को अर्पित था
सखा-भाव अर्जुन के हित था
पर जो कालरूप घोषित था, दिखा उसीके द्वारा
शिव थे तब समाधि से जागे
विधि सभीत आये थे भागे
भीष्म झुके थे धनु रख आगे, करते स्तवन तुम्हारा
आन भुला अपनी, गिरधारी !
दिया भक्त को गौरव भारी
करना, प्रभु ! मेरी भी बारी, वैसी कृपा दुबारा। •

नहीं कभी भागूँगा जग से

नहीं कभी भागूँगा जग से, सब कुछ सहन करूँगा
पथ पर जो आता जायेगा, हँस-हँस ग्रहण करूँगा
तेरे कृपा-वारि से सिंचित काँटे हों या फूल
जय की बाजी बन जायेगी जीवन की हर भूल
तेरा आशीर्वाद समझकर दुख भी वहन करूँगा
कष्ट-शोक में भी अधरों का हास नहीं छूटेगा
सब छूटेगा पर मन का विश्वास नहीं छूटेगा
ज्यों-ज्यों तिमिर बढ़ेगा आस्था की लौ गहन करूँगा
नहीं कभी भागूँगा जग से, सब कुछ सहन करूँगा
पथ पर जो आता जायेगा, हँस-हँस ग्रहण करूँगा। ●

हमने नाव सिंधु में छोड़ी

हमने नाव सिंधु में छोड़ी
तट पर ही चक्कर देना क्या ! लौ अकूल से जोड़ी
साथी जो इस पार रहे हैं
वहीं, वहीं सिर मार रहे हैं
हम तो उसे सँवार रहे हैं
आयु बची जो थोड़ी
सीमित जब असीम बन जाता
तट का खेल न उसे सुहाता
हमने उनसे जोड़ा नाता
परिधि जिन्होंने तोड़ी !
हम विलीन हों भले अतल में
मिल न सकें अमरों के दल में
पर क्या कम यदि अंतिम पल में
उसने दृष्टि न मोड़ी ! ●

कृपा का कैसे मोल चुकाऊँ !

कृपा का कैसे मोल चुकाऊँ !
मस्तक काट चढ़ा दूँ फिर भी उऋण नहीं हो पाऊँ
तूने तो अगजग से चुनकर
दिया मुझे मानव-तन सुंदर
हाथों में वीणा दी, जिस पर, नित नव सुर में गाऊँ
पर मैं अपने मन से हारा
भर न सका श्रावण-घन-धारा
दोष किसे, रिसते घट द्वारा, यदि रीता रह जाऊँ !
ज्यों-ज्यों आती घड़ी मिलन की
चिंता बढ़ती जाती मन की
सुध न रही कुछ भी निज प्रण की, क्या मुँह तुझे दिखाऊँ ! •

कहाँ है, ओ अनंत के वासी ?

कहाँ है, ओ अनंत के वासी ?
तू मन में हो फिर भी आँखें हैं दर्शन की प्यासी।
प्रेम-भक्ति के तार भले ही मैंने मन में बाँधे
रह-रहकर उठ रहे विवादी सुर भी उनसे आधे
नयनों के सम्मुख दिखती है मुझको अंध गुफा-सी
कितनी बार परस तेरा मैंने मस्तक पर पाया
कितनी बार डूबते मुझको तू तट पर ले आया
क्यों फिर भी हटती न हटाये चिंता की गलफाँसी ?
नियम-नियामक दोनों तू नियमों का हो दृढ़ पालक
पर न नियम क्या बने क्षमा के, भूल करे यदि बालक
गिरते-पड़ते भी जो तुझ तक आने का अभिलाषी ?
कहाँ है, ओ अनंत के वासी ? •

मार्ग कैसा भी बीहड़ आये

मार्ग कैसा भी बीहड़ आये
'छोड़ेगा न मुझे तू' मन से यह विश्वास न जाये !
जब निज गति पर भी हो संशय
फिर-फिर हो खो जाने का भय
देखूँ तब तुझको, करुणामय ! दोनों हाथ उठाये
ज्यों शिशु दूर कहीं भी खेले
माँ सुन रुदन गोद में ले ले
वैसे ही तू मुझे अकेले, जग में पल न भुलाये
जब इस पथ से नाता टूटे
जो तिल-तिल जोड़ा सब छूटे
तब भी मन की शांति न लूटे, काल न मुझे डराये ●

नहीं यदि तेरा मिले सहारा

नहीं यदि तेरा मिले सहारा
शिव शव हों, गूँगे चतुरानन, क्षीरसिंधु हो खारा
तेरे ही इंगित से क्षण में
सृष्टि सजी यह सूनेपन में
चमक उठे नभ के प्रांगण में, अगणित रवि-शशि-तारा
तेरा ही मृदु परस निरंतर
मुझमें यह चेतना रहा भर
फूट रहे हैं नित नव-नव स्वर, इन तारों के द्वारा
जन्म-मरण का क्यों हो लेखा
मैं तेरी शाश्वत पद-रेखा
जब भी तुझमें निज को देखा, छूटा भय-भ्रम सारा ●

कहाँ इस रथ पर आड़ लगाऊँ ?

कहाँ इस रथ पर आड़ लगाऊँ ?
जी तो करता है इस पर बढ़ता ही बढ़ता जाऊँ !
मोहपाश ग्रीवा में डाले
काम-तुरंग जुते मतवाले
जो विवेक की बाग सँभाले, सारथि किसे बनाऊँ ?
अणु से ले नभ के ग्रह-तारक
चक्कर में हैं सभी आज तक
ढूँढ़ तुझे ये आप गये थक, मैं इनसे क्या पाऊँ !
ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, योगबल
नहीं एक का भी है संबल
रही अहम् की मृगतृष्णा छल, कैसे तुझ तक आऊँ ! •

चला मैं सदा लीक से हटके

चला मैं सदा लीक से हटके
कौन, कहाँ, कब, क्या कहता है, देखा नहीं पलटके
थी अहेतुकी कृपा तुम्हारी
दूर हुईं कुंठायें सारी
करें कूपहित क्यों श्रम भारी, वासी गंगातट के !
पूजा में ही जो सुख पाता
वह प्रसाद को कब अकुलाता !
तुझसे जिसने जोड़ा नाता, द्वार-द्वार क्यों भटके !
अब मैं, नाथ ! और क्या माँगू !
इसी भाव में सोऊँ, जागूँ
हँसते, गाते यह तन त्यागू, चिंता पास न फटके
चला मैं सदा लीक से हटके
कौन, कहाँ, कब, क्या कहता है, देखा नहीं पलटके ! •

तेरी लीला की बलिहारी

तेरी लीला की बलिहारी
जिसका आदि न अंत कहीं भी, ऐसी सृष्टि पसारी
कण में सिंधु, सिंधु में कण है
क्षण-क्षण सृजन, नाश क्षण-क्षण है
अगणित रूपों में चेतन है, एक अमित छविधारी
तू रहकर भी अगम, अगोचर
रहता सब के साथ निरंतर
पाल कोटि ब्रह्मांड रहा, पर, तृण की सुध न बिसारी
'टूटे महामोह का घेरा
मिले मुझे भी दर्शन तेरा'
तुझे कठिन क्या, यदि मन मेरा, कर बैठा प्रण भारी !
तेरी लीला की बलिहारी ! •

नाथ ! क्या दोगे यह अवकाश

नाथ ! क्या दोगे यह अवकाश
नयन मूँदने के पहले, देखूँ कि खड़े हो पास ?
युद्ध-भूमि में पा शोकान्वित
वचन कहे जो अर्जुन के हित
सुन-सुन उनकी प्रतिध्वनि, दृढ़चित्, मिटा सकूँगा त्रास ?
जीवन के दिन जाते भागे
अब जो अंतिम रण है आगे
उसमें लड़ लूँगा भय त्यागे, दोगे वह विश्वास ?
सबने छोड़ दिया हो पथ में
उस कठोर यात्रा के अथ में
हे चिर-सारथि ! बैठे रथ में, धरे रहोगे रास ?
नाथ ! क्या दोगे यह अवकाश ! •

भले ही सारा जग मुँह फेरे

भले ही सारा जग मुँह फेरे
चिंता क्या, जब मेरे प्रभु ! तू सदा साथ है मेरे !

असह उपेक्षायें प्रियजन की
पीड़ायें एकाकीपन की
मैंने सब सिर झुका सहन कीं, क्या न भरोसे तेरे !

व्यर्थ अपेक्षा थी जन-जन से
क्या पाता स्वार्थांध भुवन से
बस तुझको न भुलाया मन से, ग्रस पाये न अँधेरे

अब कितना भी पथ दुर्गम हो
वर दे, बस, यह भक्ति न कम हो
तनिक न दुख, संशय, भय, भ्रम हो, काल-वधिक जब घेरे
भले ही सारा जग मुँह फेरे ! •

दृष्टि के आगे से मत हटना

दृष्टि के आगे से मत हटना
जब हो, प्रभु! जीवन-पुस्तक का अंतिम पृष्ठ पलटना

दे नव जीवन का आश्वासन
वह स्वरूप दिखलाना उस क्षण
पल में कटें मोह के बंधन, लगे नाम की रटना

मैंने उर के रंगों को ले
शब्दों के जो मधुघट घोले
उन्हें बचाना, जब मुँह खोले, चाहे काल झपटना

करना यही कृपा क्षण-क्षण की
टिकें न दुश्चिंतायें मन की
मृत्यु लगे मुझको जीवन की नित की-सी ही घटना
दृष्टि के आगे से मत हटना ! •

मेरी नाव

नाव कागज की भी है मेरी
पर, प्रभु तेरे कृपा-कवच से सदा रहेगी घेरी
डूबे नहीं, सिंधु सिर मारे
झंझा इसे हिलाकर हारे
निश्चय ही तू पार उतारे, थके लगा जब फेरी
गुण-ग्राहक, पारखी, सयाने
भर लें घट, जितना मन माने
घटे न, जग को चली चखाने, जो रस की निधि तेरी
कागज की नौका पर चढ़कर
माना, डूब गये अगणित नर
पर हों अमर, जिन्हें तू ले वर, छुए न काल अहेरी
नाव कागज की भी है मेरी। •

नाथ ! तुम जिसको अपना लेते

नाथ ! तुम जिसको अपना लेते
पहले तपा आग में उसको फिर कंचन कर देते
पत्नी के न वचन चुभ जाते
क्या तुलसी तुलसी बन पाते !
धोखा यदि न प्रेम में खाते, योग भरथरी सेते !
मोहमुक्त करने को अंतर
तुम भक्तों को देते ठोकर
वही कृपा की है जब मुझ पर, क्यों मन मूढ़ न चेते !
जिसका मन तुम में रम जाता
वह हित-हानि न चित में लाता
वर दो, पहुँचूँ तुम तक, दाता ! मैं भी नौका खेते
नाथ ! तुम जिसको अपना लेते। •

क्यो तू दुख से वृथा डरे

क्यो तू दुख से वृथा डरे !
बन कोल्हू का बैल निरंतर क्षण-सुख हेतु मरे !
मणि-मणिक तो कंकड़-पत्थर
मान-प्रशंसा शब्दाडंबर
अर्थ-काम-सुख जो मृगजल भर, कैसे तृषा हरे !
यदि अंतर चैतन्य-धाम हो
तू अकाम भी पूर्णकाम हो
क्या फिर जग दक्षिण कि वाम हो, तुझे न स्पर्श करे
जो भी चले सत्य के पथ पर
लुभा न सका उन्हें सुख पलभर
दुख की ज्वाला में तप-तपकर, कंचन हुए खरे
क्यो तू दुख से वृथा डरे ! •

मैंने जब-जब ठोकर खायी

मैंने जब-जब ठोकर खायी
मुझको तो तेरी अहैतुकी कृपा बचाती आयी
यद्यपि पूजन-भजन न जाने
जग के भोगों में सुख माने
फिर भी, प्रभु ! तेरी करुणा ने, मुझ पर प्रीति दिखायी
समझ न पाता मैं, मन मेरा
है जो सदा काम से घेरा
कैसे स्नेह पा सका तेरा ! भग्न तरी तिर पायी !
भूला मैं, पर सृष्टि-विधाता
पल तू इस अणु को न भुलाता
सोच, लाज से सिर झुक जाता, टिक पाती न ढिठाई
मैंने जब-जब ठोकर खायी। •

बता दे, क्या लूँ मैं क्या छोड़ूँ

बता दे, क्या लूँ मैं क्या छोड़ूँ
इतने ठाठ सज दिये तूने, किस-किस से मुँह मोड़ूँ !
लगे अमित रंगों के मेले
भरे न मन कितना भी खेले
कैसे मैं विराग सब से ले, जग से नाता तोड़ूँ !
तू जो नये काव्य नित लिखता
सब में मुझे अमृत-रस दिखता
रूप न उनका पल हो टिकता, क्यों न सुरों में जोड़ूँ !
जब तक उतर न शून्य गगन से
लुढ़का दे तू मृदुल चरण से
तब तक हटे न यह रस मन से, कितने भी घट फोड़ूँ
बता दे, क्या लूँ मैं क्या छोड़ूँ ! •

तुमने वंशी तो दी कर में

तुमने वंशी तो दी कर में
पर उसका क्या करूँ नहीं यदि गूँज उठे अंतर में !
अधरों पर ही नाचा करता
राग हृदय में नहीं उतरता
दीप द्वार पर तो हूँ धरता, तिमिर भरा है घर में
करुणामय ! बस इतना वर दो
उर में श्रद्धा के स्वर भर दो
भाव अमरता के दृढ़ कर दो, रहें न प्राण अधर में
जिसने तुम्हे स्वयम् में जाना
खेल मरण को उसने माना
चिंता क्यों हो, वस्त्र पुराना, यदि बदले पल भर में !
तुमने वंशी तो दी कर में ! •

कुछ भी बदले में नहीं लेना है

कुछ भी बदले में नहीं लेना है
देना है, देना है, देना है।
सूर्य नित प्रकाश दिये जाता है
चाँद सुधा-वृष्टि किये जाता है
अग-जग को प्राण-दान करने को
कोई हवाओं को लिये जाता है
मुझको भी मंत्र यही सेना है।
धरती का प्यार नहीं चुकता है
नित नव देने की उत्सुकता है
रीता नहीं होता कोष जीवन का
दाता का हाथ नहीं रुकता है
देता सतत काल को चबेना है।
कुछ भी बदले में नहीं लेना है
देना है, देना है, देना है। •

अब क्या माँगूँ आगे

अब क्या माँगूँ आगे
सब कुछ तो दे डाला तुमने पहले ही बेमाँगे
काक मानसर में जा पैठा
रजकण रत्नमुकुट पर बैठा
फिरे नहीं क्यों ऐंठा-ऐंठा, भाग्य अचानक जागे !
यही विनय है, छोड़ न देना
किया दिये से जोड़ न देना
बीच नृत्य के तोड़ न देना, कठपुतली के धागे
अब क्या माँगूँ आगे ! •

जीवन तुझे समर्पित किया

जीवन तुझे समर्पित किया
जो कुछ भी लाया था तेरे चरणों पर धर दिया
पग-पग पर फूलों का डेरा
घेरे था रंगों का घेरा
पर मैं तो केवल बस तेरा, तेरा होकर जिया
सिर पर बोझ लिये भी दुर्वह
मैं चलता ही आया अहरह
मिला गरल भी तुझसे तो वह, अमृत मानकर पिया
जग ने रत्नकोष है लूटा
मिला तँबूरा मुझको टूटा
उस पर ही, जब भी स्वर फूटा, मैंने कुछ गा लिया
जीवन मुझे समर्पित किया ! •

जब मैं सोते से जागूँगा

जब मैं सोते से जागूँगा
तब भी क्या तुझसे ये खेल-खिलौने ही माँगूँगा !
भोगों की तृष्णा में भटका
आज त्रिशंकु-तुल्य जो लटका
तब भी श्वान बना मरघट का, इधर-उधर भागूँगा !
मन तब तेरा ध्यान करेगा
सुधा-कलश नभ से उतरेगा
मैं न मरूँगा, काल मरेगा, सुख से तन त्यागूँगा
जब मैं सोते से जागूँगा ! •

वृथा ही तू क्यों जूझ मरे

वृथा ही तू क्यों जूझ मरे !
सदसत् के इस महाद्वंद्व का निर्णय कौन करे !
'नेति-नेति' कहकर जिससे ली हार मान मुनियों ने
पग दो पग चलकर ही चलना छोड़ दिया गुणियों ने
उस अनंत पथ पर क्यों तू निज दुर्बल पाँव धरे !
अपनी शाश्वतता का तुझको यदि विश्वास रहेगा
नहीं मरण के कालपाश का तिल भर त्रास रहेगा
चिंता क्या, यदि विश्वमंच पर नित नव स्वाँग भरे !
जिसके चिर-अकाट्य नियमों से जग अनुशासित होता
संभव है, वह दूर कहीं लंबी ताने हो सोता
पर उसकी अनुभूति मात्र सारे भवताप हरे
वृथा ही तू क्यों जूझ मरे ! •

खेल लेने दो मन के दाँव

खेल लेने दो मन के दाँव
फिर न पलटकर आऊँगा मैं इस सपनों के गाँव
क्या बाजी जीते या हारे !
हैं जादुई खेल वे सारे
जाने कल किस घाट उतारे, यह कागज की नाव
पा थोड़ी सिक्कों की ढेरी
कर ली थी कुछ हेरा-फेरी
अब तो चाल मंद है मेरी, काँप रहे हैं पाँव
मैं ही क्या, जो-जो भी आये
गये यहाँ से शीश झुकाये
बस दो दिन ही रही टिकाये, यह पीपल की छाँव
खेल लेने दो मन के दाँव ! •

बरसो, हे करुणा के जलधर

बरसो, हे करुणा के जलधर !
मुझे बहा ले चलो, नाथ ! आनंद-सिंधु के तट पर !
मेरे मन-प्राणों पर प्रतिक्षण
बरसो सावन की फुहार बन
धन्य बने, प्रभु ! मानव-जीवन, कृपा तुम्हारी पाकर !
देखूँ झाँकी वृंदावन की
राधा-माधव-प्रीति मिलन की
मैंने जो छवि युगल वरण की, गीतों में हो भास्वर !
बरसो यों, मेरे अंतर से
फूट चलें स्वर के निर्झर-से
अक्षर-अक्षर से रस बरसे, रुके न धारा पल भर !
बरसो, हे करुणा के जलधर ! •

कैसे तेरे सुर में गाऊँ !

कैसे तेरे सुर में गाऊँ !
डर है मुझको, इन धुन में मैं अपना सुर न गँवाऊँ
यह विराट लय भय उपजाती
बुद्धि सोचकर चक्कर खाती
कैसे, जो न ध्यान में आती, उससे राग मिलाऊँ !
यदि इस लय से आत्म-विलय हो
क्यों न मुझे फिर इससे भय हो !
यही दया कर, जब संशय हो, अंतर में सुन पाऊँ
बन पति, पिता, बंधु, गुरु, सहचर
देता रह बस ताल निरंतर
साध यही, निज सुर में गाकर, फिर-फिर तुझे रिझाऊँ
कैसे तेरे सुर में गाऊँ ! •

यदि मैं चित्र न देखूँ तेरे

यदि मैं चित्र न देखूँ तेरे
तो फिर किसके लिए निरंतर तू यों कूची फेरे !
क्यों फिर कर इतनी चतुराई
तूने है यह सृष्टि बनायी !
ऐसी-ऐसी छवि दिखलायी, नयन न हटते मेरे !
मिटती हैं रेखायें बन-बन
क्षण-क्षण होता पट-परिवर्तन
चिर-पुराण भी हैं चिर-नूतन, ये रंगों के घेरे
पर मेरा मन जहाँ बिका है
दृश्य निमिष भर वह न टिका है
मोह न क्या अपनी कृति का है, तुझको, निठुर चितेरे !
यदि मैं चित्र न देखूँ तेरे ! •

मन का यह विश्वास न डोले

मन का यह विश्वास न डोले
'जाऊँगा मैं जग से अपने तप की पूँजी को ले'
जो जीवन-प्रसून का रस है
नित-नित, नव-नव रहा विकस है
नहीं काल का उस पर वश है, कितना भी विष घोले
दल, पँखुरियाँ छोड़ भी दूँगा
सुरभि सदा उसकी रख लूँगा
फिर-फिर तेरी ओर बढ़ूँगा, अंतर के पट खोले
पूरी होते ही यह फेरी
चमकूँगा परिषद में तेरी
शून्य न होगी सत्ता मेरी, कोई कुछ भी बोले
मन का यह विश्वास न डोले ! •

प्रार्थना यदि न तुझे छू पाती

प्रार्थना यदि न तुझे छू पाती
तो चिंता क्या ! पड़े चोट पर चोट, खुली है छाती
उर पर यही चोट पड़ने पर
फूटा करते हैं मधुमय स्वर
यही चोट मुझको झंकृत कर, कविता है लिखवाती
करुण पुकारें उठ भूतल से
फिरतीं टकरा नभ-मंडल से
लोग लाख रोयें, दृगजल से, क्या होनी मिट जाती !
फिर मेरे ही लिए विधाता
कैसे भला नियम टल जाता !
सुन-सुनकर मेरी दुख-गाथा, तुझे दया क्यों आती !
प्रार्थना यदि न तुझे छू पाती ! •

सातों सुर बोलेंगे

सातों सुर बोलेंगे
जब हम वीणा छोड़ यहीं पर तेरे सँग हो लेंगे
तार बिना झंकार उठेगी
तान गगन के पार उठेगी
व्यर्थ करुण चीत्कार उठेगी
नयन नहीं खोलेंगे
तब हम तेरे चरणों में लय
चिर-निर्द्वंद्व, निरामय, निर्भय
चिति के महाकाश में अक्षय
रूप-रहित डोलेंगे
सातों सुर बोलेंगे
जब हम वीणा छोड़ यहीं पर तेरे सँग हो लेंगे। •

मेरे अंतर में छा जाओ

मेरे अंतर में छा जाओ
जनम-जनम की प्यास बुझे, प्रभु! ऐसा रस बरसाओ
कितने भी दो आगे-आगे
शिशु को रागभोग मुँहमाँगे
अपने घर की सुधि जब जागे
उनसे भुला न पाओ
बीत गये दिन खेल खिलाते
कभी हँसाते, कभी रुलाते
क्यों, पल भी जो ठहर न पाते
वही खिलौने लाओ
पत रख ली तुमने मीरा की
मिली सूर को बाँकी झाँकी
तुलसी ने मानस में आँकी
जो छवि, मुझे दिखाओ। •

करूँ क्या, यदि मन हो न विरागी !

करूँ क्या, यदि मन हो न विरागी!
तुमसे भी तो, प्रभु! जग में यह माया गयी न त्यागी
चिर-असंग भी व्याकुल क्षण-क्षण
फिरे न जनक-सुता हित वन-वन!
क्या न द्वारिका में तड़पा मन
जब राधा-स्मृति जागी!
मुझसे ही कैसे बन पाये
रहूँ हृदय पर आड़ लगाये!
क्या फिर, मैंने जब घन छाये
स्वाति-बूँद यदि माँगी!
बुझी न मन की तृष्णा अब तक
रवि न उगे, रजनी है तब तक
कृपा-दृष्टि तुम करो न जबतक
यह ठगिनी कब भागी! •

बाँधकर नियमों से जग सारा

बाँधकर नियमों से जग सारा
क्या बँध गया, नियामक! तू भी आप उन्हींके द्वारा?
कार्य सभी बाँधे कारण से
सृष्टि प्रलय से, जन्म मरण से
चला काल का चक्र जतन से
मुड़ देखा न दुबारा?
चित्र बन गया आप, चितेरे?
तेरा जाल तुझे ही घेरे?
देख-देखकर भी दुख मेरे
दे पाता न सहारा?
सुलभ मुझे जो शक्ति क्षमा की
चिर-स्वतंत्रता चेतनता की
क्या न रही वह तुझमें बाकी!
अपने से ही हारा? •

क्यों तू मरे व्यर्थ चिंता से!

क्यों तू मरे व्यर्थ चिंता से
जब तेरी अस्मिता जुड़ी है उसकी शाश्वतता से!
छिपा निरंतर वह अंतर में
साथ रहेगा शेष प्रहर में
फिर-फिर खो जाने के डर में
क्यों तू भरे उसाँसें
तोड़ घिरे संशय के धागे
बढ़ता जा मिथ्या भय त्यागे
वही छिन्न कर देगा, आगे
जो दिख रहे कुहासे
जब तेरा जीवन न यहाँ था
सोचा भी-'तू कौन? कहाँ था?'
जाना भी यदि वहीं, जहाँ था
हैं दुख-शोक वृथा-से। •

आया चरण-शरण में

आया चरण-शरण में बेसुध थककर चारों ओर से
दिन-दिन दुर्बल मन यह बाँधो, प्रभु! करुणा की डोर से

सतत चाक पर चढ़ने से क्या!
नित कंचन से मढ़ने से क्या!
रंग-रूप के बढ़ने से क्या!
मृण्मय भाजन गल जायेगा
जल की चपल हिलोर से

बाहर से जैसा भी कर दो
किन्तु प्रेम से अंतर भर दो
अपनी वह अनुभूति अमर दो
जिससे जरा-मरण-भय छूटे
भीत दृगों की कोर से

दृष्टि भले हो धूमिल जाये
मिट्टी मिट्टी में मिल जाये
नभ पर ज्योति-कुसुम खिल जाये
मेरा भग्न तार जोड़ो, प्रभु!
निज अनंत के छोर से

आया चरण-शरण में बेसुध, थककर चारों ओर से
दिन-दिन दुर्बल मन यह बाँधो प्रभु! करुणा की डोर से। ●

जीते न्याय, प्रार्थना हारी

जीते न्याय, प्रार्थना हारी
विनय यही, प्रभु ! झेल सकूँ दुख जब हो मेरी बारी

यदि तुमने रच जाल नियम के, जग से हैं मुँह मोड़ा
ज्ञान-दीप लघु दे तम में, बच्चों से नाता तोड़ा
तो मेरे ही रोने से क्यों टूटे नींद तुम्हारी !

तुम भी नर-तन में विभूतियाँ ले जब भू पर आये
अपने कर्मों के फल से क्या मुक्त कभी रह पाये
कर्म-धुरी पर घूम रही है क्या न सृष्टि यह सारी !

जलता रहे हृदय, तुम अपना न्याय पूर्ण होने दो
मुझे क्षमा की प्रत्याशा में धैर्य न बस खोने दो
दो न दया की भीख, प्रेम का तो हूँ मैं अधिकारी

जीते न्याय, प्रार्थना हारी
विनय यही, प्रभु ! झेल सकूँ दुख जब हो मेरी बारी •

तुझसे, नाथ ! और क्या माँगू !

तुझसे, नाथ ! और क्या माँगू !
कितना भी भटकूँ, तुझमें निज आस्था कभी न त्यागूँ

यह जग छलनामय है, माना
किंतु भक्तिपथ धरे सुहाना
इसमें ही तुझको है पाना

क्यों इस जग से भागूँ !

जैसे तू है यहाँ सँभाले
जो संकट आये, सब टाले
रहना सँग-सँग यही कृपा ले

जब फिर सोकर जागूँ •

सब कुछ छोड़ चला बनजारा

सब कुछ छोड़ चला बनजारा
सोने, चाँदी की झलमल में
सोया सुख से रंगमहल में
यों न, हाय ! लुटना था पल में
क्रूर काल के द्वारा !
कितने खेल खेलकर आया
तब यह कोष जमा कर पाया
हर बाजी पर जी ललचाया
दाँव उठा लूँ सारा !
अबकी हाथ लगा था गहरा
उजड़ गया पर स्वप्न सुनहरा
कौन यहाँ दम भर भी ठहरा
आया जब हरकारा !
सब कुछ छोड़ चला बनजारा। •

जो भी पाये, खोना है

मन ! जान रहा है जब तू, जो भी पाये, खोना है
जो मिल न सका जीवन में, क्यों फिर उसका रोना है !
वह मिल भी जाता तो क्या इच्छा पूरी हो पाती
जितना ज्यादा मिल जाता उतनी अतृप्ति बढ़ जाती
कोई कुछ भी कर ले पर, परिणाम वही होना है
कितने तेरे आगे थे, कितने पीछे आयेंगे
दो दिन दुनिया में अपना डंका बजवा जायेंगे !
सब को रो-गाकर आखिर धरती में ही सोना है
मन ! जान रहा है जब तू, जो भी पाये, खोना है।। •

हम सब खेल खेलकर हारे

हम सब खेल खेलकर हारे
तन के खेल, खेल कुछ मन के
झूठे थे वे सारे
बैठे सतत अहम् के रथ पर
फिरे कीर्ति-वैभव के पथ पर
नित नव संकल्पों के अथ पर
क्या-क्या रूप न धारे !
आज कहाँ वे संगी-साथी !
महल-दुमहले, घोड़े-हाथी !
जब हर तरुणी तिलोत्तमा थी
दिन वे कहाँ हमारे !
जी करता है आँखें मींचे
सो जायें इस तरु के नीचे
कोई अब यह हाथ न खींचे
कोई अब न पुकारे
हम सब खेल खेलकर हारे। •

जग में चलाचली के मेले

जग में चलाचली के मेले
जाने कहाँ लिये जाते हैं ये लहरों के रेले !

वे बचपन के बंधु कहाँ जो साथ हमारे खेले !
भीड़ बढ़ी जाती है फिर भी हम हो रहे अकेले
पग-पग पर पीड़ा बिछुड़न की, दुख भय, कष्ट, झमेले
कौन गया है पार बिना इन तूफानों को झेले !
फिर भी हमने शब्दों के कुछ महल रचे अलबेले
जिसका जी चाहे पल दो-पल इनमें आश्रय ले ले
जग में चलाचली के मेले। •

हमारे वे दिन बीत गये

हमारे वे दिन बीत गये
एक-एककर जैसे वे मधु के घट रीत गये
वे चिर-पोषित कीर हमारे
श्वेत-श्याम निज पंख पसारे
चुन-चुनकर जीवन-कण सारे, गाते गीत, गये।
पृष्ठ आयु के वे अति सुंदर
मिटा दिये किसने लिख-लिखकर !
अब न मिलेंगे किसी मोड़ पर, जो प्रिय मीत गये।
प्रेमभरे प्राणों की लय से
राग उठे थे कैसे-कैसे
वे सब दाँव स्वप्न में जैसे, हम थे जीत गये।
हमारे वे दिन बीत गये। ●

विदाई

कोई आये या मत आये
और न रह पायेंगे तट पर हम यह नाव टिकाये
एक-एक-कर नाविक सब जा रहे पाल फैलाये
एक हमींको क्यों अब भी इस तट का मोह सताये !
मोल लगा लो कुछ भी उनका, मोती जो हम लाये
जो पाना था पा हमने तो हैं बेमोल लुटाये
कमी न कुछ रत्नाकर में, नाविक जायें न गिनाये
लेते रहना रत्न उन्हींसे अब तुमको जो भाये
कोई आये या मत आये। ●

कितने बंधु गये उस पार

कितने बंधु गये उस पार
और किनारे पर हैं कितने जाने को तैयार
नौका पर चढ़ जाते हैं जो
मुड़कर भी न देखते तट को
कोई कितना भी कातर हो
करता रहे पुकार !
विरह अनंत, मिलन दो दिन का
शोक यहाँ करिए किन-किन का
उड़-उड़ जाता कर का तिनका
आँधी से हर बार !
कितने बंधु गये उस पार। •

तूने जो बोये सो काटे

तूने जो बोये सो काटे
मन रे ! अब तेरी व्याकुलता कौन दूसरा बाँटे !
कर्मों की स्वतंत्रता लेकर
तू आया था कभी धरा पर
अपनी रुचि के बीज मनोहर
थे तूने ही छाँटे !
जब वे बीज उगे, लहराये
क्यों तुझको अब रोना आये !
भर जो किये, दिये सो पाये
क्यों दुखते हैं काँटे !
तूने जो बोये सो काटे। •

जीवन यों ही बीत गया

जीवन यों ही बीत गया
पिया न आप, न दिया किसी को, प्याला रीत गया
बूँद-बूँद कर जोड़ा जो मधु सारी आयु सँजोया
एक तनिक-सी ठोकर से ही उसे निमिष में खोया
देख रहा हूँ मैं विस्मित-सा, कहाँ अतीत गया
कभी एक पल को, माना, प्रिय सपना सत्य हुआ था
जब तेरे अधरों से लगकर यह कृतकृत्य हुआ था
किंतु दूसरे ही क्षण कोई बाजी जीत गया
अब न कभी लौटेंगे वे दिन, वे पहले-सी रातें
मेघ घिरेंगे पर न फिरेंगी वे रसमय बरसातें
जाने कहाँ भुलावा देकर मन का मीत गया !
जीवन यों ही बीत गया। •

शत नमन तुझे, ओ महाकाल !

शत नमन तुझे, ओ महाकाल !
तेरी ही अविगत सत्ता से शासित है यह संसृति विशाल
ये सूर्य, चंद्र, तारे समस्त
तुझमें ही होते उदित, अस्त
तू क्षण-क्षण है कर रहा ध्वस्त, ब्रह्मांड अमित नभ में उछाल
कह, जग में ऐसा कौन बचा
तू जिसे न खाकर गया पचा
स्मारक, कविता, इतिहास रचा, हम मन को बस लेते सँभाल
जब मिल न सकेगा नया सृजन
तू निज को कर लेगा भक्षण
तब बता कि पायेगा चेतन, कैसे फिर से यह रूप-जाल
शत नमन तुझे, ओ महाकाल ! •

कागज की नाव

सागर में ले के चला कागज की नाव रे
सिंधु लाँघने की तुझे यह क्या सूझी, बावरे !

भीम लहरों में जहाँ रह न सके हैं खड़े
करके प्रयत्न जलयान भी बड़े-बड़े
कितना भी नाचे, कूदे, बढ़े, अँकड़े, अड़े
बच न सकेगा ये लगा के सभी दाँव रे !

लाये थे प्रभूत रत्न-राशि जो बटोरकर
शास्त्र जो लिए थे सभी उँगली की पोर पर
कूद गये धारा में सभी अदृश्य डोर धर
छोड़ना पड़ा है उन्हें ज्यों ही यह गाँव रे !

सिंधु लाँघने की यह क्या जी में तेरे आयी है !
लहरों के आगे किसीकी न चल पायी है
सागर में, सहर्ष डूबने में ही भलाई है
चादर के बाहर क्यों पसारे निज पाँव रे !

और यह नाव भली चुनी है उमँगकर
इसके तो शत्रु सौ खड़े हैं पग-पग पर
बची डूबने से किसी तीर से भी लगकर
फटेगी, जलेगी या बिकेगी बिना भाव रे !

सागर में ले के चला कागज की नाव रे
सिंधु लाँघने की तुझे यह क्या सूझी, बावरे ! •

जब भी नाम हमारा आये

जब भी नाम हमारा आये
नयन झुका, मुँह मोड़, दाँत से रहना ओंठ दबाये
साँस दीर्घ भी लेना ऐसे दोनों हाथ उठाये
समुझें जमुहाई सब, कोई आँसू देख न पाये
पलकें मलती रजकण के मिस, मन की व्यथा छिपाये
उँगली की मुद्रिका फिराती रहना दायें-बायें
जब भावों का ज्वार न सँभले, छाती रुँध-सी जाये
कहना उठकर-'अब चलना है, साँझ हुई, घन छाये'
जब भी नाम हमारा आये। ●

मुझे भर लेती है बाँहों में

मुझे भर लेती है बाँहों में
फूलों की सुगंध, जब मैं फिरता वन की राहों में
पत्तों के घूँघट सरकाकर
देखा करते दो दृग सुंदर
झुक चुंबन लेती गालों पर, तरु-शाखा छाँहों में
हरियाली की ओढ़े चादर
वनश्री नीरव सोयी भू पर
जग जाती है पगध्वनि सुनकर, मिलने की चाहों में
गाते भ्रमर, लता शरमाती
बीते दिवसों की स्मृति आती
मुझे कल्पना फिर ले जाती, उन्हीं ऐशगाहों में
मुझे भर लेती है बाँहों में ! ●

जब यह जीवन फिर पायेंगे

जब यह जीवन फिर पायेंगे
कभी, कहीं तो चलते-चलते पथ पर मिल जायेंगे
पलकें झुका फेर मुँह लोगी ?
देखा अनदेखा कर दोगी ?
या मन में कुछ हलचल होगी
लोचन भर आयेंगे ?

जैसे कोई याद पुरानी
जाग उठेगी पीर अजानी ?
क्या न प्रेम की यही कहानी
फिर से दुहरायेंगे ?

अथवा किसी अजान देश में
समवय, समरुचि, भिन्न वेश में
लिये हृदय में प्रीति, शेष में
केवल पछतायेंगे ? •

जीवन गाते-गाते बीते

जीवन गाते-गाते बीते
और पहुँचकर अंतिम सुर पर सुमनांजलि-सा रीते
दिन भर सागर-तट पर गाऊँ
बालू के घर बना-मिटाऊँ
गाते ही गाते घर आऊँ, सोच न हारे-जीते
नव-नव धुन जागे क्षण-क्षण में
नित नव राग उठें जीवन में
गीतों में सज दूँ जो मन में, दुख हों मीठे तीते
जीवन गाते-गाते बीते ! •

कब आये मधुर घड़ी

हर संध्या शृंगार किये मैं देखूँ खड़ी-खड़ी
जाने, कब तुमसे मिलने की आये मधुर घड़ी !
कब छाया पथ से सकुचाते
मिलनोत्सुक बाँहें फैलाते
आ जाओ तुम मृदु मुस्काते !
देखूँ कब मैं रूप तुम्हारा पट की ओट अड़ी !
पल में हर तन-मन सर्वस लो
मुझको निज बाँहों में कस लो
मैं झुकती जाऊँ बेबस हो
नयनों से सावन-भादों की लगती रहे झड़ी !
हर संध्या शृंगार किये मैं देखूँ खड़ी-खड़ी
जाने, कब तुमसे मिलने की आये मधुर घड़ी ! •

अयि सघन-घन-कुंतले

अयि सघन-घन-कुंतले !
किससे मिलने यों सजधजकर उतरी व्योमतले।
धूपछाँह की साड़ी पहने
कानों में हीरों के गहने
किसके साथ रात भर रहने
आयी साँझ ढले !
रिमझिम-रिमझिम बजते नूपुर
लिपट रहे कंपित उर से उर
रोम-रोम से रस के आतुर
निर्झर फूट चले
अयि सघन-घन-कुंतले !
किससे मिलने यों सजधजकर उतरी व्योमतले। •

एक दिन वासंती संध्या में

एक दिन वासंती संध्या में
खड़े सिंधु-तट पर थे जब हम, हाथ हाथ में थामे
ढलते रवि को मुझे दिखाकर,
तुमने पूछा था अकुलाकर
तुम भी लौट सकोगे जाकर, क्या कल नयी उषा में ?
और लौट भी सके दुबारा,
क्या होगा फिर मिलन हमारा ?
पा लूँगी फिर प्रेम तुम्हारा, भाव यही मन का, मैं ?
तभी पलटकर ज्वार बह गया
पल में रज का महल ढह गया
प्रश्न वहीं का वहीं रह गया, उड़ता हुआ हवा में
एक दिन वासंती संध्या में ! •

होली-गीत

मेरी आँखों में पड़ गयी गुलाल, पिया!
रेशम की सुंदर साड़ी मसक गयी, प्रीत बनी जंजाल, पिया!

रूप निगोड़ा कहाँ लेके जाऊँ, लद गयी फूलों से डाल, पिया!
रस के भरे कचनार-सी बाँहें, गोरे गुलाब-से गाल, पिया!
मान भी कैसे करूँ अब तुमसे, आये बिताकर साल, पिया!
इतने दिनों पर याद तो आयी! हो गयी मैं तो निहाल, पिया!
एक ही रंग में भीजे हैं दोनों, एक है दोनों का हाल, पिया!
साँवरे-गोरे का भेद कहाँ अब, तन-मन लाल-ही-लाल, पिया!
आँखों में अंजन, माथे पे बिंदिया, हाथ अबीर का थाल, पिया!
बचके गुलाब अब जा न सकोगे, लाख चलो हमसे चाल, पिया!
मेरी आँखों में पड़ गयी गुलाल, पिया! •

'जाल'

सुरों के बंधन मैंने खोले

सुरों के बंधन मैंने खोले
जी चाहे जिस धुन में गायें गुणिजन अब इनको ले
पिंजर-बद्ध रहे जो शुक-से
ढँके राग के रत्नांशुक से
सुन मेरे पद उनके मुख से, पाहन-मन भी डोले
गाँव-गाँव में, नगर-नगर में
सुर अब गूँजेंगे घर-घर में
भाव रूप लेगा अंतर में, जब रसना रस घोले
सुख-दुख, मिलन-विरह, जय-क्षय में
हो कोई भी राग हृदय में
लुक-छिपकर गीतों की लय में, मेरा कवि भी बोले
सुरों के बंधन मैंने खोले ! •

जीवन फिर-से भी यदि पाऊँ

जीवन फिर-से भी यदि पाऊँ
वे स्नेहीजन, वे अलबेले मित्र कहाँ से लाऊँ !
जाने पुण्य उगे थे कैसे
मिले पिता, माता, गुरु वैसे
बीते जो दिन सपने जैसे
कहाँ ढूँढ़ने जाऊँ !
वह सम्मान मिला, यश छाया
धन्य हो गयी मानव-काया
जो परिवार, प्रिया-सुख पाया
सोच-सोच पछताऊँ
चारों ओर लगा है मेला
रहूँ भीड़ में किन्तु अकेला
जिनाक विरह न जाये झेला
कैसे उन्हें भुलाऊँ ! •

मुरली कैसे अधर धरूँ

मुरली कैसे अधर धरूँ !
सुर तो वृंदावन में छूटे, कैसे तान भरूँ
जो मुरली सब के मन बसती
जिससे थी तब सुधा बरसती
आज वही नागिन-सी डँसती, छूते जिसे डरूँ
जिसको लेते ही अब कर में
पीड़ा होती है अंतर में
कैसे फिर उसकी धुन पर मैं, जग को मुग्ध करूँ
इसको तभी धरूँ अधरों पर
जब सँग-सँग हो राधा का स्वर
जब यह मुरली सुना-सुनाकर, उसका मान हरूँ
मुरली कैसे अधर धरूँ। •

कोई राधा से कह देता

कोई राधा से कह देता
उसके लिए विकल है अब भी गीता-शास्त्र-प्रणेता
यद्यपि योगेश्वर कहलाता
मैं सुख-दुख में सम रह जाता
किन्तु ध्यान जब उसका आता
चुपके से रो लेता
साथ रुक्मिणी के भी रहकर
उसे न भूल सका मैं पल भर
आता हूँ नित यमुना-तट पर
मन की नौका खेता
कोई राधा से कह देता। •

तुमने अच्छी प्रीति निभायी !

तुमने अच्छी प्रीति निभायी!
एक बार भी, मोहन! व्रज की ओर न दृष्टि फिरायी!
माना राजकाज था बंधन
जनहित में अर्पित था जीवन
किन्तु रुक्मिणी से मिलते क्षण
राधा याद न आयी!
गाँव, गली कितनी भी छूटे
डोर प्रेम की कैसे टूटे!
क्यों रच-रचकर रास अनूठे
भोली प्रिया रिझायी!
राधा ने थी पढ़ी न गीता
सोचा भी, उस पर क्या बीता!
रोती फिरी लिये घट रीता
यमुना - तीर, कन्हाई! •

नाथ ! क्या राधेश्याम कहाये !

नाथ ! क्या राधेश्याम कहाये !
एक बार राधा से मिलने भी व्रज लौट न पाये
कभी विचार उठा यह मन में
कैसी है वह वृंदावन में !
वचन दिये जो कुंजभवन में, जाकर सभी भुलाये
धर्म आपने सब से पाला
जिसने जो माँगा दे डाला
एक मुझे ही विष का प्याला, देना क्यों रह जाये
व्रज में पुनः जन्म यदि लूँगी
मन में तो धुन यही रटूँगी
पर पनघट पर पग न धरूँगी, मुरली लाख लुभाये
नाथ ! क्या राधेश्याम कहाये ! •

जिनका नाम लिए दुख भागे

जिनका नाम लिए दुख भागे
मिला उन्हें तो जीवन-भर दुख ही दुख आगे-आगे
छूटा अवध, साथ प्रिय-जन का
शोक असह था पिता-मरण का
देख कष्ट मुनियों के मन का, वन के सुख भी त्यागे
वन-वन प्रिया-विरह में फिरना
'कैसे हो सागर का तिरना ?'
भ्राता का मूर्च्छित हो गिरना, नित नव-नव दुख जागे
गूँजी ध्वनि जब कीर्ति-गान की
फिर चिर-दुख दे गयी जानकी
माँग उन्हीं-सी शक्ति प्राण की, मन ! तू सुख क्या माँगे ! •

स्वामी! यह क्या मन में आया !

स्वामी! यह क्या मन में आया!
किसके हित-साधन-हित सीता को वनवास दिलाया!
अबकी दोष न था दासी का
देना था न भरत को टीका
चोर न क्या प्रभु के ही जी का
दूत सामने लाया!
वज्र गिराया सुखी सदन में
कैसे निष्ठुर बनकर क्षण में
भेजी, नाथ! सगर्भा वन में
प्रिया सुकोमल-काया!
रामराज्य का यश इसमें ही!
बलि को सदा मिली वैदेही!
हम कैसे चुप रहें, भले ही
जग मुँह खोल न पाया!
दयानिधि! यह क्या मन में आया!
किसके हित-साधन-हित सीता को वनवास दिलाया! •

अवध में कैसे पाँव धरूँ !

अवध में कैसे पाँव धरूँ।
वनवासिनी पुनः रानी का कैसे स्वाँग भरूँ!
जिस घर से कलंक ले सिर पर
कभी निकल आयी मैं बाहर
उसमें अब फिर से प्रवेश कर
लज्जा से न मरूँ!
दुखमय है कुल गाथा मेरी
बीत गये युग देते फेरी
प्रिय इतनी अब रात अँधेरी
रवि को देख डरूँ
मन को पति-चरणों से जोड़े
अब मैं हूँ जग से मुँह मोड़े
कोई व्यंग्य-बाण फिर छोड़े
क्यों यह सहन करूँ!
अवध में कैसे पाँव धरूँ! •

नहीं भी लौट अवध में जाये

'नहीं भी लौट अवध में जाये
पर यह दासी कभी आपसे अलग न, प्रभु ! कहलाये
'जब-जग कीर्ति आपकी गाये
इस वनवासिन को न भुलाये
सब पाया प्रभु-दर्शन पाये, अब क्यों मन अकुलाये'
'जो दुख क्षण-क्षण राजभवन में
नाथ ! आपने झेले मन में
उनकी तुलना में तो वन में
मैंने सुख ही पाये
'लवकुश ! उठो, पिता से भेंटो
पग से लिपट न रोओ, बेटो
जननी की दुश्चिंता मेटो, चलते क्षण मुस्काये' •

विरह ही अंतिम सत्य भुवन का

विरह ही अंतिम सत्य भुवन का
महाशून्य में समा रहा है स्रोत निखिल जीवन का
प्रकृति सदसों वेश बदलती
क्षण-क्षण नव रूपों में ढलती
इस लीला पर, जो नित चलती
मोह वृथा है मन का
पर द्युति अभी हुई जो ओझल
बन आदर्श प्रेम का उज्वल
भोग करेगी पति सँग अविचल
चिर-सौभाग्य मिलन का
राम! हृदय में दुख मत पाओ
माया का आवरण हटाओ
धरो धैर्य, सबको समझाओ
शोक हरो जन-गण का। ●

नाथ ! जब सरजू लेने आयी

नाथ ! जब सरजू लेने आयी
क्या फिर बीते जीवन की स्मृति अंतर में लहरायी!
पिता-शोक, वन-मिलन भरत का
सीता-हरण, दौत्य हनुमत का
करके स्मरण असुर-वध व्रत का
लौटी फिर तरुणाई!
फिर से सहा अनुज-मूर्च्छा-दुख!
उगे अमित रावण-शिर सम्मुख!
गये भालु-कपि चरणों में झुक!
जय-ध्वनि पड़ी सुनाई!
अंतिम घड़ियों में प्रयाण की
डुबा अश्रु में व्यथा मान की
पुनः आ मिली प्रिया प्राण की
ज्यों जल की परछाँई! ●

(अहल्या के उद्धार का प्रसंग)

'जय राम ! ज्योति के धाम ! विगत-भय-काम-क्रोध !
करुणा के सागर ! दीनबंधु ! भव-मुक्ति-शोध !
मैं पाप-निमग्ना, भग्ना, दुख-लग्ना, अबोध
दे शरण चरण की, नाथ ! हरो मन का विरोध,
यह चिर-कलंक धुल जाये

'अनुरागी मन के पावन पति पर ही उदार
मैं, हाय ! अभागिन, नागिन-सी कर उठी वार
प्रभु ! शिला बन गयी नारी शिर ले शाप-भार
तुम, देव ! खोल दो आज हृदय के रुद्ध द्वार
जड़ता नव जीवन पाये

'दुख भोग रही जो कर्म-चक्र-भ्रमिता, सकाम
प्रभु ! बिना तुम्हारे आत्मा को मिलता विराम
नारी अधमा, उस पर वामा मैं सतत वाम,
केसे छू लूँ ये चरण सरोरुह मुक्तिधाम
भव-जलनिधि के बोहित-से

जिन चरणों में जीवन का मंगल-स्रोत निहित
शीतल, कोमल, त्रय-ताप-हरण, सुर-मुनि-पूजित,
अशरण के शरण, तड़ित-विजड़ित-घन-शोभा-जित,
इस कंटक-वन में आये जो मेरे ही हित,
आनंदभरे सत्-चित्-से !

'अंतर में जो भी कलुष, पाप, लांछना, व्यथा
सब बनें आज कंचन-सी पारस परस यथा
कैसे कह दूँ मैं, देव ! कि जीवन गया वृथा
जब जुड़ी अहल्या के सँग पावन राम-कथा
कल्याणी, मंगलकारी !

जलता न हृदय में ग्रीष्म, नयन सावन होते !
क्यों आते जग में राम न जो रावण होते !
होते न पतित तो कहाँ पतित-पावन होते !
प्रभु ! चरण तुम्हारे कैसे मनभावन होते
बनती न शिला जो नारी !'

दृग से झर-झर आँसू बरसे, रुँध गया गला
कह सकी न आगे कुछ भी भावाकुल अबला
बोले प्रभु करुणा-सजल, 'अहल्ये ! न रो, भला
तू पावन सदा पूर्णिमा की ज्यों चंद्र-कला,
अब और नहीं तपना है
वह क्षणिक हृदय की दुर्बलता, वह पाप-भार
कल का सारा जीवन जैसे बीती बयार
वह देख, आ रहे गौतम, पहला लिये प्यार
अब से नूतन जीवन, नव संसृति में सँवार
जो बीत गया सपना है

रवि-शशि से मन की चपल वृत्ति में बँधे आप
किसके मानस में उदित न होते पुण्य-पाप !
गिर-गिर कर उठना चेतनता का यही माप,
जन-जीवन पर बस उसी पुरुष की पड़ी छाप,
जो कभी न दुख से हारा
जो तिल-तिल जलता गया, किन्तु बुझ सका नहीं
जो पल-पल लड़ता गया कष्ट से थका नहीं
जो रुका न पथ पर, भय-विघ्नों से झुका नहीं
जो चूक गया फिर भी निज को खो चुका नहीं
जन वही मुझे है प्यारा। •

चतुष्पदियाँ

चतुष्पदियां

हर नया फूल नयी गंध लिये आता है
हर भ्रमर नव्य प्रणय-बंध लिये आता है
नये विचार को रुचता न पुराना बाना
हर नया काव्य नये छंद लिये आता है

प्राण का धर्म ही साहित्य है, व्यवसाय नहीं
शुद्ध व्यक्तित्व का विभास, संप्रदाय नहीं
मोम-सा आप जलो तो प्रकाश फैलेगा
सिद्धि का और यहाँ दूसरा उपाय नहीं

तारे हजार व्योमतले आते हैं
आने को सभी बुरे-भले, आते हैं
सूरज को भी मिल जाय उजाला जिनसे
कोई कभी ऐसे भी चले आते हैं

यों तो अंबर से भी विस्तृत है एक व्यक्ति की भूख
कभी न थी मुझे सम्मान की या शक्ति की भूख
इस उपेक्षा की अनावृष्टि भरे जीवन में
जग ही जाती है कभी आपकी अनुरक्ति की भूख

घूँट मैं विष का पिये जाता हूँ
विश्व को अमृत दिये जाता हूँ
अब न कोई कहीं उदास रहे
सबका दुर्भाग्य लिये जाता हूँ

कितने सुख-सपनों को जोड़कर बनाया है
यश-वैभव सबसे मुँह मोड़कर बनाया है
काल के पटल पर यह ताजमहल गीतों का
मैंने निज को ही तोड़-तोड़कर बनाया है

मन रे ! विश्वास कर, प्रतीक्षा कर, वहन कर
अनुक्षण अनुचिंतन कर, अनुभव कर, ग्रहण कर
गहन तम-भाल से उठेगी भ्रम-दहन शिखा
आस्था रख, आस्था रख, सहन कर, सहन कर

कोई भी साज न सामान हो सफर के लिए
पाँवों के नीचे धरा और गगन सर के लिए
वस्तुएँ जो भी यहाँ की हैं, यहीं छोड़ उन्हें
जैसे आये थे, उसी भाँति चलो घर के लिए

लहर बढ़ी तो किनारों को छूटते देखा
किरण चढ़ी तो सितारों को टूटते देखा
बहार आयी तो फूलों की नींद आयी थी
खिले जो फूल बहारों को रूठते देखा

गहन इस नील नभ के पार भी नभ दूसरा कोई
अमर आलोक, देवों का जहाँ आवास सचमुच है
नयन की नीलिमा के पार जैसे मन तुम्हारा है
कि मन के पार भी जैसे मधुर अव्यक्त-सा कुछ है

फूल की हर पंखड़ी मधुमास है
प्रति लहर गति, किरण-किरण प्रकाश है
रूप की हर साँस मादकताभरी
प्रेम का प्रत्येक पल इतिहास है

नेत्र विष, अमृत हैं, शराब भी हैं
मधुप हैं, चाँद हैं, गुलाब भी हैं
कौन इनसे न मरे, जिये, झूमे
मौन हैं, प्रश्न हैं, जवाब भी हैं

आपसे नयन क्या मिले पल भर
एक जीवन लुटा दिया मैंने
दीप घर में न जल सका, लेकिन
दीप से घर जला लिया मैंने

अमृत भरा चाँद चमकता था जो गगन में
और भी सुहाना हुआ आकर आम्रवन में
और ही थी शोभा उसकी, पत्तियों के घूँघट में
उतरी नई दुल्हन सी जब चाँदनी भुवन में

रागिनी मधुर हर अधर की है
किस कलाकार ने मुखर की है
हर सुमन अंश अंशुमाली का
हर कली कला कलाधर की है

जी तो करता है भू-गगन को दबोच लूँ
तारे क्या बिचारे चाँद सूरज को नोच लूँ
मेरा ही प्रभुत्व रहे सृष्टि में सभी पर, किन्तु
आप मैं रहूँगा कितने दिन, जरा सोच लूँ

फूलों की तरह हँसके बिखर जायेंगे
बच्चों की तरह दौड़के घर जायेंगे
तू क्यों है परीशान अभी से, ऐ दिल
मौत आने भी दे, शान से मर जायेंगे

जिनसे पराधीन देश मुक्ति-मंत्र पा सका
देखा है इन्होंने मुख गांधी का, सुभाष का
रख लेना चिताग्नि से बचा कर ये नयन, इनमें
अंकित स्वर्ण-युग है भारतीय इतिहास का

अश्रु वेदना के कितने हैं भू-कपोल पर
चाहिए सभी को धरती के अनमोल वर
केवल अपने ही लिए कामना करूँ मैं कैसे
देना है तुझे तो दे सभी को हाथ खोलकर

जिसके बल पर था तुमसे माँगा और पाया भी
रीझा कभी खीझा तुमसे रूठा, तुम्हे गाया भी
डिगने न देना कभी, प्रभु! वह विश्वास मेरा
रहूँ मैं आश्वस्त, संमुख तम हो सघन छाया भी

चाहे विश्वास करो चाहे करो अविश्वास
चाहे दूर समझो उसे चाहे पास से भी पास
प्यार करो या न करो, मानो या न मानो उसे
उसकी कृपा न करेगी कभी तुम्हे निराश

खिला था फूल भी कोई बहार के पहले
बजा था तार कोई, दिल के तार के पहले
यह बात और है, हम जान न पाये हों उसे
यह इंतज़ार था तेरा ही प्यार के पहले

मैं स्वयं में ही बिगड़ता भी हूँ, बनता भी हूँ
रीझता, खीझता फिर रूठता, मनता भी हूँ
और क्या चाहिए सम्मान, विभूषण मुझको
काव्य हूँ, कवि हूँ, सभामंच हूँ, जनता भी हूँ

होता नहीं उर में उल्लास, कभी गाता मैं
पीड़ा नहीं होती तो, मिठास कहाँ पाता मैं
भूलें न करता यदि, कविता बनती कैसे
होता नहीं प्रेम तो अपूर्ण रह जाता मैं

देखी गुणियों जब यह मोतियों की माला है
बोले 'तूने चोरी की या डाका कहीं डाला है'
कैसे मैं बताऊँ उन्हें, इसका हर मोती मैंने
डूब-डूब गहरे काल-सिंधु से निकाला है

तिनके-सा आँधी में तनकर ढह गया हूँ मैं
सागर के ज्वार-सा उफनकर बह गया हूँ मैं
बनना तो चाहा था विजय-स्तंभ वाणी का
दंभ का समाधि-स्थल बनकर रह गया हूँ मैं

ज्योति-सी उमड़ चली लगती है
स्वर्ण मय गली-गली लगती है
श्याम घन केश हटा लो मुख से
रूप की धूप भली लगती है

दुःख कुछ हँस के झेलता हूँ मैं
कुछ स्वरों में उडेलता हूँ मैं
खेलती जैसे लहर सागर में
गोद में उसकी खेलता हूँ मैं

मयक़शों में कभी फ़रिश्तों में
ज़िंदगी जी रहा हूँ किश्तों में
मैं हूँ शायर भी और सूफ़ी भी
जोड़ लें चाहे जैसे रिश्तों में

ग़ज़ल हो गीत हो, दोहे या रुबाई, कुछ हो
किया सभी ने है रौशन मेरे ख़यालों को
शराब कैसे भी प्याले में भरी हो वह तो
नशे में लाके ही रहती है पीनेवालों को

•

विविधा

काया

काया को वृथा ही तुच्छ संतों ने बताया है
जो कुछ यहाँ है, इसी काया की ही माया है
साधन यही है भक्ति, मुक्ति, ज्ञान, साधना का
संतो से मिलन भी तो इसीने करवाया है

विराग

यह भी क्या विराग घर-द्वार छोड़ चल दे
राग कर यों कि वह विराग का ही फल दे
माना काम, क्रोध, लोभ जन्म से मिले हैं तुझे
साधना वही है जो स्वभाव को बदल दे

शब्दों की असमर्थता

वृथा न जाल शब्द के सदैव हम बुना किये
छुटे न मोहपाश से, न भक्तिभाव में जिये
रहे सदा अपंख ही विचार आचरण बिना
न हो विराग-वृत्ति तो जलें न ज्ञान के दिये

वार्धक्य

आयु के शेष की इन घड़ियों में
कैद हूँ काल की हथकड़ियों में
अब मिले प्यार की ख़ुशबू कैसे
दिल की सूखी हुई पंखड़ियों में!

सानेट

अनुक्रम

कवियों से /७५
मेरी कविता /७६
पावस-प्रिया /७६
शिशिर-बाला /७७
बिरहिणी /७८
उत्तरी पवन से /७८
मेघदूत के यक्ष से /७९
गांधी-भारती से /८०
मैं कब यहाँ अकेला था /८४

सॉनेट (चतुर्दशपदी)*

कवियों से

रत्न-जड़ित पिंजरे में तुमने काव्य-विहग को बंद किया,
बाँध दिये पर उसके रेशम और स्वर्ण के तारों से
जैसे रवि संध्या-दिगंत को, निज में राग-मरंद पिया
घेर कला का भवन कलात्मकता की दृढ़ दीवारों से।

गूँज न पाया स्वर उसका तारों से मिला, सधा-साधा,
गृह-प्रांगण के पार, मुक्त नभ के नीले सोपानों पर
चढ़ न सका वह, कृत्रिम गति, शृंगार-समृद्धि बनी बाधा,
भार-रूप-सा शब्द-जाल, पद-बंधन उच्च उड़ानों पर।

फिरा छानता अपने खग के पीछे पर्वत, घाटी, मैं,
डाल-डाल वह उड़ा और मैं पात-पात पर जा बैठा
उसका स्वर दुहराता, मैंने कवियों की परिपाटी में
चरण न बाँधे उसके, कोमल पंखों को न कभी ऐंठा।

मेरा विहग स्वर्ग से भू की परिक्रमा देता क्षण में,
और क्षीण किलकारी भरता जग का, जग के आँगन में।

•

* सॉनेट पाश्चात्य काव्य शैली का छन्द है। हिन्दी या अन्य भारतीय भाषाओं में काव्य की इस विधा का बहुत कम प्रयोग हुआ है। इसमें १४ पंक्तियां होती है। पाश्चात्य काव्य में सॉनेट के दो रूप माने गये हैं, पेट्रार्कियन (इटालियन कवि पेटार्क के नाम पर) तथा शेक्सपीरियन (आंग्ल कवि शेक्सपीयर के नाम पर)। प्रथम शैली में पहली ८ पंक्तियों में भाव विकसित होता है और अन्त की ६ पंक्तियों में वह धीरे-धीरे असंदृत हो जाता है जबकि दूसरी शैली में प्रारंभिक १२ पंक्तियों में भाव फैलता है तथा अन्त की दो पंक्तियों में उसका निष्कर्ष रख दिया जाता है। गुलाब जी ने दूसरी शैली का अनुसरण किया है। 'गाँधी-भारती' के सॉनेटों को छोड़कर ये सभी सॉनेट १९४१ में लिखे गए थे। इनके प्रारम्भिक तीन चौकों में पहली और तीसरी तथा दूसरी और चौथी पंक्तियों का तुक है तथा अंत की दो पंक्तियाँ समतुकांत हैं। पढ़ते समय पंक्ति के अंत में रुकना आवश्यक नहीं है। विराम चिह्नों के अनुसार रुकना चाहिए क्योंकि भाव अधिकांशत: समाप्त न होकर एक पंक्ति से दूसरी पंक्ति में चला जाता है।

मेरी कविता

जिस निगूढ़ सुषमा की मोहक छवि का होता उन्मीलन
कोयल के गीतों में, पाटल की कोमल पंखड़ियों में
प्रकृति और मानव-जग में, कहते हैं जिसे रूप-दर्शन
हृदय लुभानेवाली जो सुषमा मिलती सुंदरियों में,

प्रेमी अनुभव करता जिसे प्रिया के पहले चुंबन में,
जिस स्वर्गीय ज्योति की आभा ले अपने मुख पर जननी
हँसती पहली बार प्रथम नवजात पुत्र के दर्शन में,
और भाव जो होते कवि के बढ़ती देख कीर्ति अपनी,

कुछ वैसी हो सृष्टि हृदय में, पढ़-पढ़कर कविता मेरी,
सुख की मोहक स्मिति अधरों के अवगुंठन में झूल उठे,
चित्रित मधु-स्मृतियाँ नयनों में सपनों-सी देती फेरी
मेघों-सी घुल जायँ, सुखद अनुभव में छाती फूल उठे।

नील-कमल-से इन गीतों में रूप अरूप करे धारण,
कार्य सुखद अस्तित्व मात्र, केवल इच्छा जिनका कारण।

•

पावस-प्रिया

रिमझिम-रिमझिम बरस रही हैं घनी घटायें पावस की
दूबों से पूरित मेरे आँगन में पहरों से आकर।
सजनी ! आज चतुर्दिक से रजनी है घिरी अमावस की,
कभी गरजते घन, विद्युत से कभी चमक उठता अंबर।

इतनी दूर हुई तुम मुझसे जितनी दूर कल्पना से
वस्तु सत्य, मैं कैसे मन को बहलाऊँ इन घड़ियों में
काली रजनी की, जब प्रतिभापूर्ण काव्य की रचना-से
तड़ित-चकित घन बरस रहे हैं शत-शत मुक्ता-लड़ियों में।

इस अँधियारी रजनी में, अंचल में विद्युत-दीप सँवार
प्रेयसि ! क्या आयी हो तुम श्यामाभिसारिका-सी पल भर
मेरे इस एकांत कक्ष में, कांत कामना-सी सुकुमार
दूर देश से, मेघों-सी ही झंझानिल गति से चलकर ?

नील तिमिरमय वसन तुम्हारा, बूँदें चल नूपुर-मणियाँ,
सुनता मैं रिमझिम आँगन में, प्रिये ! तुम्हारी पग-ध्वनियाँ।

•

शिशिर-बाला

अर्धनग्न-तनु, मुख पर झीना किसलय-अवगुंठन खींचे
बैठी उन्मन प्रेम-व्यथायें भर कंपित स्वरलहरी में,
चिर-एकाकिनि ! अयि मरुवासिनि ! इस पीपल तरु के नीचे
कौन वसंती स्वर अलापती तुम निर्जन दोपहरी में ?

उष्ण पवन आँधी-सा स्वर्णिम लटें तुम्हारी उड़ा-उड़ा
खेल रहा उजड़े तरु की नंगी शाखाओं से उन्मन,
शेष पत्तियाँ भी उसकी ज्यों सूखे स्तन से छुड़ा-छुड़ा
जननी के, अंक में तुम्हारे बरसा जाता है क्षण-क्षण।

धूलभरी पलकें मलती, अलकें कपोल से खिसकाती,
बारबार कटि-वसन खींचती, विस्मित, खोयी-सी निज में,
शिथिल करों से पोंछ अधर पर से रवि के चुंबन, गाती
कौन, आह ! तुम ओसकणी-सी जग के सूखे सरसिज में ?

तुम वसंत-दूतिका, शिशिर-सहचरी कि रानी हो वन की ?
या तीनों से भिन्न कल्पना हो केवल कवि के मन की ?

•

बिरहिणी

देख रहा मैं दूर चाँदनी के देशों के पार कहीं,
शून्य कक्ष में, मूँद गुलाबी पलकें, बाला एक थकित
दिव-श्रम से, सोयी, कपोल में बिंबित जिसके पड़ा वहीं
उतरा हुआ सितार, अधखुली अधर-कली है मंदस्मित।

गंधभरी उन्मद साँसें चल रहीं मूक रेखाओं-सी,
क्षण-क्षण उठते-गिरते हिम-से श्वेत वक्ष पर बायाँ हाथ
तिरछा झुका पड़ा, पाँचों उँगलियाँ फेन-लेखाओं-सी
चल अंचल में लिपटी उठ-गिर रहीं हृदय-स्पंदन के साथ !

जलता कोने में दीपक जिसके चरणों में नाच रहा
अंधकार, जैसे उस बाला की अलकें झिलमिल हिलतीं
शुभ्र भाल पर। मौन कक्ष, कोई तार्किक हो जाँच रहा
मानो किसी नियम को उसमें देख जटिल शंका मिलती।

आती हुई पवन से कहती दीपशिखा झुक, 'मत छूना
इस सुषुप्त छवि को;' शय्या का आधा भाग पड़ा सूना।

•

उत्तरी पवन से

आज नींद से जाग उठे तुम हिम-अवनी-सी शांत, सुधर
मृदु नवनीत-धवल, कोमल, सरसी की शय्या पर तंद्रिल,
शत-शत बाहु-मृणालों में भर बाँह, कमल-मुख पर मुख धर
अर्ध रात्रि में सोये थे जो नग्न लहरियों से घुल-मिल।

गत यामा, मार्तंड-सदृश उद्दंड ! आज तुम खड़े हुए
भुज-ग्रंथियाँ छुड़ा वामाओं की, उद्दाम मुक्त स्वर में
विजय-गीत गाते उन्नत गिरि-शिखरों पर, जो झड़े हुए
पतझड़-पत्रों-से, लो, नीचे ढहे आ रहे पलभर में।

ध्रुव-दिगंत-पथ से मदांध मेघों की लेकर सैन्य प्रचंड
क्रुद्ध जूझते सिंधु-तरंगों से, अंबर तरु को झकझोर
धूमकेत-से चले आज तुम, विंध्य-सेतु के करते खंड
गहन असूर्यम्पश्या विषुवत-रेखा-गत वन-भू की ओर

वासंती-मद-मूर्छित मैं भी जड़-सा, आज पड़ा भू पर,
लेते चलो उठाकर मुझको भी निज बाँहों में, ऊपर।

•

मेघदूत के यक्ष से

जिनकी बूँदों की अजस्र लड़ियों-से तेरे अश्रु गिरे
नील शिला पर, सुनकर तेरा विरह-व्यथा-पूरित संदेश
मौन रामगिरि-आश्रम से जो चले गये थे, कभी फिरे
वे अषाढ़ के प्रथम मेघ फिर, जा तेरी कांता के देश ?

एक कल्प-से एक वर्ष की अवधि बिताकर भुला सका
अश्रु सजल पत्नी के भुजपाशों में तू वियोग का ताप
या उससे पहले ही सब दुख शोक भुलाकर जीवन का
स्वर्ग सिधार गया निज प्रिया-विरह में करता हुआ विलाप।

या जड़ मेघ पवन-प्रेरित वे तुझसे दर्शित मार्ग धरे
पहुँच सके न कभी अलकापुर में तेरी भार्या के पास
पतिव्रता जो अवधि-अंत तक रह न सकी निज प्राण धरे
पावस ऋतु में भी प्रिय का संदेश न कोई पा, हत-आश

यह न हुआ तो तेरे स्वर क्यों अब भी व्यथा न खोते हैं ?
उन संदेशों से विगलित ये मेघ आज तक रोते हैं।

•

गाँधी भारती से –

(१)

वह न रक्त-रेखा, मानवता के जिसने धो पाप अमाप
बचा लिया मोहांध विश्व को, वह जो बढ़ी वधिक की ओर
प्रशमित करने महापाप को उसके, जो धरती पर काँप
टूट गई दो पग चलकर ज्यों बापू के जीवन की डोर।

विजय असत् पर थी सत् की वह, तम पर चिर-प्रकाश-शर की,
मृण्मय पर चिन्मय की, जीवन की जाग्रत की जड़ता पर,
अमर प्रेम की क्षणिक रोष पर, नश्वर पर अविनश्वर की,
नर पर नारायण की, सत्य-अहिंसा की बर्बरता पर

वह थी परिणय-सूत्र, बँध गये जिसमें निखिल भुवन के प्राण
एक प्राण हो, वह थी जय का लेख प्रदीप्त तड़ित-द्युति-सा
मानवता की आशाओं का, वह थी रक्त-शिखा अम्लान
जिसमें लिखा गया था संसृति-ज्ञान, ऋचाओं में श्रुति-सा

वह जीवन की अमर-ज्योति थी जो बुझ सकती कभी नहीं।
धरती के कण-कण से नूतन जीवन बन जो फूट रही।

•

(२)

गलने लगा हिमालय लज्जा से, सागर चिंघाड़ रहा
चाबुक से आहत मृगेंद्र-सा, पराधीनता का अभिशाप
ढोया था जिस सहनशील धरती ने, अंतर फाड़ रहा
उसका यह विश्वासघात का विष से अधिक भयंकर पाप।

आह! तुम्हीं को अंतिम आहुति बनना था इस ज्वाला में
जो खा गयी सहस्रों शिशुओं, कन्याओं, माताओं को,
पुत्र-पुत्रवधुओं को, तरुणों को, तरुणी या बाला में
बिना भेद के, अबलाओं को, बहनों को, भ्राताओं को।

कहीं जान पाते, स्वतंत्रता! ओ आर्यों की कुलदेवी,
तू इतनी कठोर है, इतनी कष्टमयी है तेरी प्रीति
एक हाथ में अमृत, एक में विष, तेरे प्रिय पद-सेवी
दोनों को चखते हैं, तेरी रही सदा से ही यह रीति-

हम न मचलते राष्ट्रपिता से तुझे बुलाकर लाने को,
घर के ही दो टूक कर दिये, मिले पुत्र ही खाने को!

•

(३)

अट्टहास कर उठा महा भौतिकता की वारुणी पिये
नव पौलस्त्य, बँधे बंधन में वरुण, कुबेर, मरुत, दिग्पाल,
इंद्र, चंद्र, रवि, सब सब उसके, आया अशेष फण शेष लिए
शीश-छत्र-सा, लक्ष्मी चँवर डुलाती दासी-सी नत-भाल।

शोणित कुंभ दंभ का पूरित, उठी ज्योति आत्मा की एक
पद-मर्दित वसुधा से, उतरा नहीं शक्तिमद फिर भी, हाय!
बरबस हर ली पर-स्वतंत्रता-सीता कर छल-छद्म अनेक
समझ सत्य को चिर-निर्वासित, चिर-एकाकी, चिर-असहाय।

आत्मिक तेज जगा सहसा शत-शत शीर्षों की जड़ता देख
छुटे राम के तीर, काम के तार-तार भुज-मस्तक छिन्न
उड़े व्योम में, पढ़ तापस की स्मिति में महाशांति का लेख
सकुच पराजित गिरा द्वेष ज्यों अमर प्रेम में लीन, अभिन्न

पाप-मुक्त देवत्व हो गया, जयी मनुज, दानवता क्षार,
हे गांधी के राम! तुम्हारी गूँजी घर-घर जैजैकार।

•

(४)

महानाश के महाकाल में जीवन की पतवार पकड़
पहुँचा दी जिसने स्वदेश की नौका सकुशल लक्ष्य-समीप
छुटे तीर-सी, दी उखाड़ चिर-सुदृढ़ राज्यभवनों की जड़
आत्मिक बल से, बुझा फूँक से ही वह मानव-भाग्य-प्रदीप!

जिसने मिट्टी के ढूहों को छूकर दिया मनुज का रूप,
जड़ को वाणी दी, वाणी को बल, बल को आत्मा का तेज,
कर्म-भावना-ज्ञान-योग का जिसने दिया यथार्थ स्वरूप
एक बिंदु में, मनुज अभागा उसे नहीं रख सका सहेज-

युग-युग तक, कैसे इसको कर क्षमा सकेगा ईश कभी!
एक पाप से शापित चिर-दिन धरा, एक के तप से ही
जैसे सुमनांजली देव-पूजित वह थी हो रही अभी,
पुष्पवती-फलवती हुई थी जैसे एक विटप से ही।

रोओ, हाय ! स्तब्ध है धरती, आज हिमालय काँप रहा।
पिता रक्त से अपने निज पुत्रों के धो अभिशाप रहा।

•

(५)

'भारत मेरे स्वप्नों का वह, जिसमें सब समान, सब एक,
सब का एक लक्ष्य, सबको समान अवसर, समान अधिकार,
सब का राज्य, लोकतंत्रात्मक, सुखी सभी, सबमें सुविवेक,
सभी धनिक, धन-निस्पृह सब संतुलित-शक्ति-भावना-विचार,

'सब हरिभक्त, सभी विद्रोही अत्याचारों के, सब शांत,
सत्य-अहिंसक सभी, सभी स्वस्थित, सब वीत-राग-भय-क्रोध,
सभी परार्थी, परमार्थी सब, जीवन-मुक्त, कुसुम-से कांत,
कोमल सभी, कठोर सभी, सब-विनयमूर्ति, सबमें प्रतिरोध,

'सब समानधर्मा, धर्माचारी सब, अभय, अशोक, अलिप्त
सभी पाप से भीत, पुण्यकर्मा, सब एक दूसरे के
सुख से सुखी, दुखी दुःखों से, जैसे अयुत सरों में दीप्त
आकृतियाँ हों एक भानु की, सब सबमें सबको देखें

सबका शुभ सोचें सब, सबके द्वारा सबका हो कल्याण,'
यह बापू की वाणी सुंदर-'सबको सन्मति दे भगवान'।

•

(६)

राजा राम अयोध्या के थे ! हुए विदा जो उसको छोड़
त्रेता में ही ! कृष्ण गँवा निज प्राण व्याध के शर द्वारा
चले गये सुरधाम ! नहीं ! तो फिर कैसे हमसे मुँह मोड़
बापू दूर, चले जायेंगे प्रेम भुलाकर यह सारा !

गूँजेगी प्रार्थना सभा कैसे न मधुर उन वचनों से !
मोहन की वंशी न गूँजती अब भी कालिंदी के कूल
शरद-पूर्णिमा में ! आती गोपियाँ न क्या कलियाँ खोंसे
आधी गुँथी हुई वेणी में, स्वर सुनते ही सुध-बुध भूल !

आज प्रतिष्ठित वह भी देखो जन-जन के अंतरतर में
गोकुलपति-सा, गूँज रही है सत्य-अहिंसा की गीता
उर-उर में, प्रतिध्वनित आज उसकी गाथा ज्यों घर-घर में
युग-युग से प्रतिध्वनित हो रहे सीता-राम, राम-सीता

त्रेता का तापस, द्वापर का वही सारथी, कलि में आज
संत बना सेगाँव* गाँव का पहने सित खद्दर का साज।

•

*सेगाँव - सेवाग्राम का पुराना नाम है।

मैं कब यहाँ अकेला था

मुझे नहीं इसका दुख, मुझको जीवन में यश मिल न सका,
गणना हुई न मेरी धरती के महान कवियों के बीच
मेरे तप की स्वीकृति में सुधियों का मस्तक हिल न सका,
दिया न ऊँचा स्थान किसीने मुझे दर्शकों में से खींच।

मुझे नहीं इसका दुख, मुझको जीवन में धन मिल न सका,
स्वर्ण-रजत की चकाचौंध से हँसा न मेरा क्षुद्र कुटीर।
सुरा, सुंदरी-भ्रू-कटाक्ष से हृदय सुमन-सा खिल न सका,
सजे नहीं स्वागत को मेरे, उन्नत भवन, नगर-प्राचीर।

मुझे नहीं इसका दुख, मुझको जीवन में सुख मिल न सका,
जब जो निश्चय किया सदा उससे विपरीत हुआ परिणाम,
मित्र कृतघ्न, बंधु विद्वेषी, भार प्रणय का झिल न सका
दुर्बल अनबूझे अंतर से, कोई जुगत न आयी काम।

सदा पास तुम तो थे, स्वामी! मैं कब यहाँ अकेला था!
यश, वैभव, सुख का कोलाहल, सब पल भर का मेला था।

•

हिन्दी ग़ज़ल

अनुक्रम

कुछ हम भी लिख गये हैं तुम्हारी किताब में /८९
उतरती आ रही है प्राण में परछाइयाँ किसकी /८९
पहले तो मेरे दर्द को अपना बनाइये /९०
खिली गुलाब की दुनिया तो है सभी के लिए /९०
हरदम किसीकी याद में जलते रहे हैं हम /९१
मिलने की हर खुशी में बिछुड़ने का गम हुआ /९१
यह ज़िन्दगी तो कट गयी काँटो की डाल में /९२
कभी हम से खुलो जाने के पहले /९२
फिर उन्हें हम पुकार बैठे हैं /९३
आप क्यों जान को यह रोग लगा लेते हैं! /९३
आज तो शीशे को पत्थर पे बिखर जाने दे /९४
सभी तरफ है अँधेरा, कहीं भी कोई नहीं /९४
गंध बनकर हवा में बिखर जायँ हम /९५
तू जिसके लिए बेचैन है यों... /९६
दिल में रहते थे कभी आपके हम, भूल गये! /९६
यों तो रंगों की वो दुनिया ही छोड़ दी हमने /९६
कभी प्यार से मुस्कुराओ तो क्या है /९७
किसी बेरहम के सताये हुए हैं /९७
यों पहुँचने को हज़ारों की नजर तक पहुँचा /९८
हुआ प्यार का यह असर मिलते-मिलते /९८
हमें तो हुक्म हुआ सर झुकाके आने का /९८
कोई जान अपनी लुटा गया... /९९
दिल में ये प्यार के बहम क्या हैं! /९९
तेरे वादों पे अगर एतवार आ जाये /१००

तुम्हे बेतकल्लुफ किया चाहता हूँ /१००
हमको पानी ही पिलाया है, कोई बात नहीं /१००
लाख चक्कर हों सुराही के, हमारा क्या है! /१०१
आखिर इस दिल की पुकारों में तुझको देख लिया /१०१
प्यार दिल में न अगर था तो बुलाया क्यों था! /१०२
बात जो कहने की थी, होंठों पे लाकर रह गये /१०२
प्यार औरों से नहीं, हमसे अदावत न सही /१०३
कोई दिल में आकर चला जा रहा है /१०३
खुल के आओ तो कोई बात बने /१०३
ज़िन्दगी फिर कोई पाते तो और क्या करते! /१०४
कहें जो 'हाँ' तो नहीं है 'हाँ' भी... /१०४
उनसे इस दिल की मुलाक़ात अभी आधी है /१०५
तेरा दर् छोडके जाने का कभी नाम न लूँ /१०५
कभी पास आ रही है, कभी दूर जा रही है /१०५
ऐसी बहार फिर नहीं आयेगी मेरे बाद /१०६
आज हो चाहे दूर भी जाना, मेरे साथी! मेरे मीत! /१०६
कभी बेसुधी में रुके नहीं, कभी भीड़ देखके डर गये /१०६
जो भी जितनी दूर तक आया, उसे आने दिया /१०७
दिन जिंदगी के यों भी गुजर जायँ तो अच्छा /१०७
धोखा कहें, फरेब कहें, हादसा कहें /१०८
पीने की देर है न पिलाने की देर है /१०८
ख़त्म रंगों से भरी रात हुई जाती है /१०८
कोई मंजिल नयी हरदम है नजर के आगे /१०९
प्यार की हमको ज़रूरत कभी ऐसी तो न थी /१०९
हरेक सवाल पे कहते हो कि यह दिल क्या है /११०

फिर-फिर वही धुन लेकर यों किसने पुकारा है! /११०
लगा कि अब तेरी बाँहों में कोई और भी है /११०
तुम्हें प्यार करने को जी चाहता है /१११
दर्द कुछ और सही, दिल पे सितम और सही /१११
तेरी अदाओं का हुस्न तो हम... /११२
कभी दो कदम, कभी दस कदम... /११२
प्यार की हम तो इशारों से बात करते हैं /११३
कुछ और चाँद के ढलते सँवर गयी है रात /११३
प्यार का रँग हज़ारों से अलग होता है /११३
जीने का कोई हासिल न मिला... /११४
यों तो सभी से मेल मुहब्बत है राह में /११४
तुझसे लड़ जाय नज़र हमने ये कब चाहा था /११५
दिये तो हैं, रौशनी नहीं है, खड़े हैं बुत.. /११५
दिन गुजरते गये, रात होती रही /११५
आप और घर पे हमारे, क्या खूब! /११६
क्या छिपी है अब हमारे दिल की हालत आपसे! /११६
चैन न आया दिल को घड़ी भर... /११७
तेरी बेरुखी ने मुझको ये हसीन गम दिया है /११७
हमारी ज़िन्दगी ग़म के सिवा कुछ और नहीं /११७
आ, कि अब भोर की यह आखिरी महफ़िल बैठे /११८
जो यहाँ पे आये थे सैर को... /११८
साथ हरदम भी, बेनकाब नहीं /११९
फिर इस दिल के मचलने की कहानी याद आती है /११९
कभी धड़कनों में है दिल की तू... /१२०
अब कहाँ चाँद-सितारे हैं नजर के आगे! /१२०

१

कुछ हम भी लिख गये हैं तुम्हारी किताब में
गंगा के जल को ढाल न देना शराब में
हम से तो ज़िंदगी की कहानी न बन सकी
सादे ही रह गये सभी पन्ने किताब में
दुनिया ने था किया कभी छोटा-सा एक सवाल
हमने तो ज़िंदगी ही लुटा दी जवाब में
लेते न मुँह जो फेर हमारी तरफ से आप
कुछ ख़ूबियाँ भी देखते ख़ानाख़राब में
कुछ बात है कि आपको आया है आज प्यार
देखा नहीं था ज्वार यों मोती के आब में
हमने ग़ज़ल का और भी गौरव बढ़ा दिया
रंगत नयी तरह की जो भर दी गुलाब में

२

उतरती आ रही हैं प्राण में परछाइयाँ किसकी !
हवा में गूँजती हैं प्यार की शहनाइयाँ किसकी !
ये किसकी याद ने रातों उन्हें बेसुध बनाया है !
तड़पकर रह गयीं शीशे में ये अँगड़ाइयाँ किसकी !
लिये जीने की मजबूरी खड़े हैं तीर पर हम-तुम
गले मिल कर चली लहरों में ये परछाइयाँ किसकी !
हुए देखे बहुत दिन फिर भी अक्सर याद आती हैं
वो भोली-भाली सूरत और वे अच्छाइयाँ किसकी !
कोई जैसे मुझे अब दूर से आवाज़ देता है
बुलाती हैं गुलाब आँखों की वे अमराइयाँ किसकी !

३

पहले तो मेरे दर्द को अपना बनाइए
फिर जो भी सुनाना हो, ख़ुशी से सुनाइए
ख़ुशबू न वह मिटेगी जो दिल में है बस गयी
जाकर कहीं भी प्यार की दुनिया बसाइए
पलकों की ओट में कोई दिल भी है बेक़रार
मुँह पर भले हो बेरुख़ी हमसे दिखाइए
कुछ मैं भी अपने आपको धीरज सिखा रहा
कुछ आप भी तो खुद को तड़पना सिखाइए
मुस्कान नहीं होंठों पर, आँखें भरी-भरी
सौ बार आइए मगर ऐसे न आइए
उड़िए सुगंध बनके हवाओं में अब, गुलाब !
निकले हैं बाग़ से तो ग़ज़ल में समाइए

४

खिली गुलाब की दुनिया तो है सभीके लिए
मगर गुलाब है खिलता किसी-किसीके लिए
न मौत के लिए आये न ज़िंदगी के लिए
तड़पने आये हैं दुनिया में दो घड़ी के लिए
अदाएं तेरी जो, ऐ ज़िंदगी ! सँभाल सके
कलेजा चाहिए पत्थर का आदमी के लिए
ये हमने माना कि जीवन है एक अँधेरी रात
कभी तो वे भी चले आयें रोशनी के लिए
करेगा कौन उन्हें प्यार अब हमारी तरह !
न चाँद फिर कभी निकलेगा चाँदनी के लिए
जहाँ भी होती है चर्चा तेरी रंगीनी की
हमारा नाम भी लेते हैं सादगी के लिए

५

हरदम किसी की याद में जलते रहे हैं हम
करवट ही ज़िंदगी में बदलते रहे हैं हम
जाना किधर है, आये कहाँ से, पता नहीं
कोई चलाये जा रहा, चलते रहे हैं हम
ऐसे तो हमको आपने देखा न था कभी
हर बार इस गली से निकलते रहे हैं हम
हरदम किसीके पाँव की आहट सुना किये
गिर-गिरके ज़िंदगी में सँभलते रहे हैं हम
देखे जो कोई रंग हैं सौ-सौ गुलाब में
मौसम के साथ-साथ बदलते रहे हैं हम

६

मिलने की हर खुशी में बिछुड़ने का ग़म हुआ
एहसान उनका खूब हुआ फिर भी कम हुआ
कुछ तो नज़र का उनकी भी इसमें कसूर था
देखा जिसे भी प्यार का उसको वहम हुआ
नज़रें मिलीं तो मिलके झुकीं, झुकके मुड़ गयीं
यह बेबसी कि आँख का कोना न नम हुआ
ज्यों ही लगी थी फैलने घर में दिये की जोत
त्यों ही हवा का रुख भी बहुत बेरहम हुआ
कुछ तो चढ़ा था पहले से हम पर नशा, मगर
कुछ आपका भी सामने आना सितम हुआ
आती नहीं है प्यार की ख़ुशबू कहीं से आज
लगता है अब गुलाब का खिलना ही कम हुआ

७

यह ज़िंदगी तो कट गयी काँटों में डाल में
रखते हो अब गुलाब को सोने के थाल में !
कुछ तो है बेबसी कि न आती है मौत भी
मछली तड़प रही है मछेरे के जाल में
साज़ों को ज़िंदगी के बिखरना नहीं था यों
कुछ तो हुई थी भूल किसीकी सँभाल में
आहट तो उनकी आयी पर आँखें हुईं न चार
रातें हमारी कट गयीं ऐसे ही हाल में
बँधकर रही न डाल से खुशबू गुलाब की
कोयल न कूकती कभी सुर और ताल में

८

कभी हमसे खुलो जाने के पहले,
मिलें आँखें तो शरमाने के पहले
जरा आँसू तो थम जायें कि उनको,
नज़र भर देख लें जाने के पहले
जो घायल खुद हो औरों को रुलाये,
शमा जलती है परवाने के पहले
मिला प्याले में जितना कुछ बहुत है,
इसे पी लो भी छलकाने के पहले
ग़ज़ल यों तो बहुत सादी थी मेरी,
कोई क्यों रो दिया गाने के पहले !
गुलाब ! ऐसे भी क्या चुप हो गये तुम !
खिलो कुछ रात घिर आने के पहले

९

फिर उन्हें हम पुकार बैठे हैं
फिर कोई दाँव हार बैठे हैं
दिल कहाँ और कहाँ तेरी दुनिया !
शीशा पत्थर पे मार बैठे हैं
ज़िंदगी कुछ तो भर दे प्याले में
हम भी पीने उधार बैठे हैं
होंगे मोती कहीं उन आँखों में
हंस जमुना के पार बैठे हैं
कुछ तो सुंदर था रूप पहले से
और कुछ हम सँवार बैठे हैं
कैसे दिल चीरकर दिखायें गुलाब
प्यार पर पहरेदार बैठे हैं

१०

आप क्यों जान को यह रोग लगा लेते हैं
वे तो बस वैसे ही फूलों की हवा लेते हैं
हमको भूली है नहीं याद घड़ी भर उनकी
देखें, अब कब वे हमें पास बुला लेते हैं
एक-से-एक है तस्वीर इन आँखों में बसी
जब जिसे चाहते सीने से लगा लेते हैं
है न दुनिया में कहीं कोई पराया हमको
जो भी मिलता है उसे अपना बना लेते हैं
एक दिन बाग़ से खुद ही चले जायेंगे गुलाब
आज खिलते हैं अगर, आपका क्या लेते हैं !

११

आज तो शीशे को पत्थर पे बिखर जाने दे
दिल को रो लेंगे, ये दुनिया तो सँवर जाने दे
ज़िंदगी कैसे कटी तेरे बिना, कुछ मत पूछ
कहने को यों तो बहुत कुछ है, मगर जाने दे
तेरे छूते ही तड़प उठता है साँसों का सितार
अपनी धड़कन मेरे दिल में भी उतर जाने दे
जी तो भरता नहीं इन आँखों की खुशबू से, मगर
ज़िंदगी का बड़ा लंबा है सफर, जाने दे
सुबह आयेगा कोई पोंछने आँसू भी, गुलाब !
रात जिस हाल में जाती है, गुज़र जाने दे

१२

सभी तरफ है अँधेरा, कहीं भी कोई नहीं
भरम ही मन का है मेरा, कहीं भी कोई नहीं
नहीं निशान भी तेरा, कहीं भी कोई नहीं
घिरा है घेरे में घेरा, कहीं भी कोई नहीं
वहाँ पहाड़ की घाटी से, आधी रात के बाद
ये किसने फिर मुझे टेरा ! कहीं भी कोई नहीं
चले हैं खोजने किसको ये खोजनेवाले !
पता तो बस यही तेरा- 'कहीं भी कोई नहीं'
कहाँ है रोशनी तारों की, चाँद, सूरज की !
अँधेरा और अँधेरा, कहीं भी कोई नहीं
कहाँ जुड़ी थीं सभायें ? कहाँ थे उनसे मिले ?
कहाँ था अपना बसेरा? कहीं भी कोई नहीं
नहीं रहे हैं वही वह कि मैं ही मैं न रहा !
न साँझ वह न सवेरा, कहीं भी कोई नहीं
भले ही साँप यह रस्सी में आ रहा है नज़र

न वीण है सँपेरा, कहीं भी कोई नहीं
अभी तो छाँह-सी उतरी थी एक दिल में, मगर
नज़र को मैंने जो फेरा, कहीं भी कोई नहीं
न बाग़ है, नहीं भौंरे, न तितलियाँ, न गुलाब
उठा वसंत का डेरा, कहीं भी कोई नहीं

१३

गंध बनकर हवा में बिखर जायँ हम,
ओस बनकर पँखुरियों से झर जायँ हम
तू न देखे हमें बाग़ में भी तो क्या !
तेरा आँगन तो खुशबू से भर जायँ हम
हमने छेड़ा जहाँ से तेरे साज़ को,
कोई वैसे न अब इसको छू पायेगा
तेरे होंठों पे लहरा चुके रात भर,
सोच क्या अब जियें चाहे मर जायँ हम !
घुप अँधेरा है, सुनसान राहें हैं ये,
कोई आहट कहीं से भी आती नहीं
खाये ठोकर न हम-सा कोई फिर यहाँ,
एक दीपक जलाकर तो धर जायँ हम
तेरे हर बोल पर हम तो मरते रहे,
तुझको भायी न कोई तड़प प्यार की
हमसे मोड़े ही मुँह तू रही, ज़िंदगी !
छोड़ भी जान, अब अपने घर जायँ हम
रात काँटों पे करवट बदलते कटी,
हमको दुनिया ने पलभर न खिलने दिया
आयेंगे कल नये रंग में फिर गुलाब,
आज चरणों में उनके बिखर जायँ हम

१४

तू जिसके लिये बेचैन है यों, वह दर्द को तेरे जान तो ले
सीने पे न रक्खे हाथ, मगर, सीने की तड़प पहचान तो ले
होंठों पे न आये नाम तेरा, वह मुड़के तुझे देखे भी नहीं
तू भी है उसीका दीवाना, इस बात को दिल में जान तो ले
हो फूल न तू काँटा ही सही, कुछ बाग़ में अपनी साख तो रख
वह देखे तुझे, ख़ुश हो न अगर, मुँह फेरके भौंहें तान तो ले
या जीत के उसको अपना बना, या हारके बन जा तू उसका
हर हाल में तेरी जीत ही है, यह प्यार की बाज़ी ठान तो ले
माना कि, गुलाब ! उन आँखों में, रंगों का तेरे कुछ मोल नहीं
राहों में बिखर जा प्यार की तू, कुछ दिल का कहा भी मान तो ले

१५

दिल में रहते थे कभी आपके हम, भूल गये !
उम्र भर की थी निभाने की क़सम, भूल गये !
बड़े भोले हैं, बड़े दूध के धोये हैं आज
पीके जब प्यार में बहके थे क़दम, भूल गये !
वे भी दिन थे कि हमीं आये हरेक बात में याद
आज हर बात में कहते हैं कि हम भूल गये
हमसे काँटे भी निकलवाये थे तलवों के कभी
आके मंज़िल पे सभी राह के ग़म भूल गये !
अब तो कहते हैं कि भाते ही नहीं हमको गुलाब
आपके दिल को कभी था ये वहम, भूल गये !

१६

यों तो रंगों की वो दुनिया ही छोड़ दी हमने
चोट एक प्यार की ताज़ा ही छोड़ दी हमने
सिर्फ आँचल के पकड़ लेने से नाराज़ थे आप !
अब तो ख़ुश हैं कि ये दुनिया ही छोड़ दी हमने

आप क्यों देखके आईना मुँह फिरा बैठे !
लीजिये, आपकी चरचा ही छोड़ दी हमने
क्या हुआ फूल जो होंठों से चुन लिये दो-चार !
और ख़ुशबू तेरी ताज़ा ही छोड़ दी हमने
पूछा उनसे जो किसीने कभी- 'कैसे हैं गुलाब?'
हँसके बोले कि वो बगिया ही छोड़ दी हमने

१७

कभी प्यार से मुस्कुराओ तो क्या है !
हमें भी जो अपना बनाओ तो क्या है !
वही लौ इधर भी, वही लौ उधर भी
दिये से दिये को जलाओ तो क्या है !
नज़र आइना, रूप भी आइना है
मगर बीच में यह बताओ तो क्या है !
हमारे-तुम्हारे सिवा कौन है अब !
ये परदा घड़ी भर हटाओ तो क्या है !
गुलाब एक दिन पास पहुँचेंगे ख़ुद ही
जो आओ तो क्या है, न आओ तो क्या है !

१८

किसी बेरहम के सताये हुए हैं
बड़ी चोट सीने पे खाये हुए हैं
हरेक रंग में उनको देखा है हमने
उन्हीं के जलाये-बुझाये हुए हैं
कोई तो किरन एक आशा की फूटे
अँधेरे बहुत सर उठाये हुए हैं
जहाँ चाँद, सूरज हैं, तारे हैं लाखों
दिया एक हम भी जलाये हुए हैं
गुलाब उनके चरणों में पहुँचें तो कैसे !
सभी ओर काँटे बिछाये हुए हैं

१९

यों पहुँचने को हज़ारों की नज़र तक पहुँचा
फूल लेकिन न बहारों को नज़र तक पहुँचा
दी थी आवाज़ बहुत डूबनेवाले ने, मगर
बुलबुला सिर्फ किनारों की नज़र तक पहुँचा
अक्ल को राह न मिल पायी ख़ुद अपने घर की
प्यार का अक्स सितारों की नज़र तक पहुँचा
उनको हर बात में एक बात नयी आयी नज़र
नाम जब आपका यारों की नज़र तक पहुँचा
हो गया क़ैद भले ही तेरे काँटों में गुलाब
बनके ख़ुशबू तो हज़ारों की नज़र तक पहुँचा

२०

हुआ प्यार का यह असर मिलते-मिलते
कि झुकने लगी है नज़र मिलते-मिलते
हटा रुख़ से परदा न बेगानेपन का
कोई रह गया उम्र भर मिलते-मिलते
न था दिल का कोई खरीदार तो क्या !
चले सबसे हम राह पर मिलते-मिलते
नहीं खेल है उनकी आँखों को पढ़ना
कि मिलती है दिल की ख़बर मिलते-मिलते
गुलाब ! आप कितनी भी ख़ुशबू छिपायें
नज़र कह गयी कुछ मगर मिलते-मिलते

२१

हमें तो हुक्म हुआ सर झुकाके आने का
नहीं ख़याल भी उनको नज़र उठाने का
ये किस बहार की मंज़िल पे रुक गए हैं क़दम
नज़र को आगे इशारा नहीं है आने का

निगाहें बढ़के लिपटती रहीं निगाहों से
चले तो वक्त नहीं था गले लगाने का
नहीं जो प्यार हो हमसे तो दोस्ती ही सही
ग़रज कि कुछ तो बहाना हो मुस्कुराने का
गुलाब यों तो हज़ारों ही खिल रहे हैं यहाँ
है रंग और ही लेकिन तेरे दीवाने का

२२

कोई जान अपनी लुटा गया, तेरी चितवनों के जवाब में
उसे गंध प्यार की ले उड़ी, नहीं और क्या था गुलाब में !
ये सवाल है मेरे प्यार का, ये जवाब है तेरे रूप का
तुझे क्या बताऊँ मैं, दिलरुबा ! जो लिखा है दिल की किताब में !
जो चढ़ा तो फिर न उतर सका, मेरी उम्र भर का ये था नशा
जिसे तू नज़र से पिला गया, उसे क्या मिलेगा शराब में !
जो कहा ये मैंने कि हमसफर ! कभी मेरी ओर भी हो नज़र
तो हँसा कि प्यार के नाम पर, यही ग़म है तेरे हिसाब में
कभी तुम हुए भी जो सामने, तो नज़र मिली न गले-गले
ये कसक, ये दर्द, ये तड़पनें, ये जलन है उसकी गुलाब में

२३

दिल में ये प्यार के वहम क्या हैं !
तू ही बतला कि तेरे हम क्या हैं
जब न कोई लगाव है हमसे
ये इशारे क़दम-क़दम क्या हैं !
क्या करें, दिल किसीपे जो आ जाय !
जानते हम भी, ये भरम क्या हैं
उनके वादों पे जिये जाते हैं
ये भी एहसान उनके कम क्या हैं !
उनके रंगों में मिल गये हैं गुलाब
अब किसे क्या बतायें, हम क्या हैं !

२४

तेरे वादों पे अगर एतबार आ जाये
यों पलटकर न कोई बार-बार आ जाये
कुछ तो छलके तेरे प्याले में भरी है जो शराब
कुछ तो इस दर्दभरे दिल को क़रार आ जाये
तेरी ख़ुशबू से है तर बाग़ का पत्ता-पत्ता
क्यों न फिर हमको हरेक फूल पे प्यार आ जाये !
हमने हर मोड़ पे आँखों को बिछा रक्खा है
जाने किस ओर से सावन की फुहार आ जाये
हम न मानेंगे कभी दिल में भी उनके हैं गुलाब
रंग आँखों में भले ही हज़ार आ जाये

२५

तुम्हें बेतकल्लुफ़ किया चाहता हूँ
ये क्या कर रहा हूँ ! ये क्या चाहता हूँ !
कभी पूछ भी लो कि क्या चाहता हूँ
तुम्हें चाहने की सज़ा चाहता हूँ
ज़रा अपने आँचल का साया तो कर लो
दिया हूँ, हवा से बुझा चाहता हूँ
रहूँ होश में जब ये परदा उठाओ
तुम्हींमें तुम्हें देखना चाहता हूँ
गुलाब आज यों बाग़ में कह रहा था-
'तुझे मैं भी, ऐ बेवफ़ा ! चाहता हूँ'

२६

हमको पानी ही पिलाया है, कोई बात नहीं
कुछ नशा यों भी तो आया है, कोई बात नहीं
ज़िंदगी है कि हरेक हाल में कट जाती है
आपने दिल से भुलाया है, कोई बात नहीं

आपको याद हमारी भी तो आयी होगी
नाम मुँह पर नहीं आया है, कोई बात नहीं
हमको ख़ुशबू तो उन आँखों की मिली है हरदम
प्यार अगर मिल नहीं पाया है, कोई बात नहीं
उनके नाख़ून कटाने की है चरचा घर-घर
हमने सर भी जो कटाया है, कोई बात नहीं !
फिर बहार आयेगी, फिर बाग़ में फूलेंगे गुलाब
जी तो ऐसे ही भर आया है, कोई बात नहीं

२७

लाख चक्कर हों सुराही के, हमारा क्या है!
हम तो प्यासे रहे पानी के, हमारा क्या है!
उनकी महफ़िल है, शराब उनकी है, प्याला उनका
हम तो दो घूँट चले पी के, हमारा क्या है!
उड़ रही है तेरे जूड़े की जो ख़ुशबू हर ओर
एक सिवा दिल की तसल्ली के, हमारा क्या है!
हँसके बहला भी लिया, रूठ के तड़पा भी दिया
हम हैं मुहरे तेरी बाज़ी के, हमारा क्या है!
जब कहा उनसे- 'खिले आज तो होंठों पे गुलाब'
हँसके बोले कि हैं माली के, हमारा क्या है!

२८

आख़िर इस दिल की पुकारों में तुझको देख लिया
डूबते वक्त किनारों में तुझको देख लिया
यों तो दुनिया में कहीं था न पता तेरा, मगर
हमने कुछ प्यार के मारों में तुझको देख लिया
फिर कभी लौटके आयी नहीं ख़ुशबू वैसी
दिल ने सौ बार बहारों में तुझको देख लिया

हमने पायी है वही टूटते दिल की तस्वीर
ज़िंदगी ! चाँद-सितारों में तुझको देख लिया
तू भले ही रहा दुनिया से अलग होके, गुलाब !
पर किसी ने था हज़ारों में तुझको देख लिया

२९

प्यार दिल में न अगर था तो बुलाया क्यों था !
हमसे मिलने का ख़याल आपको आया क्यों था !
जब नज़र मोड़के चुपके से चले जाना था
दो घड़ी के लिए सीने से लगाया क्यों था !
हमको आँखें भी उठाने की मनाही थी अगर
आपने ख़ुद को सितारों से सजाया क्यों था !
सर पटकती है शमा लाश पे परवाने की
कोई पूछो भी तो उससे कि जलाया क्यों था
हमने माना कि बसे आपके दिल में थे गुलाब
आपने उनको मगर इतना सताया क्यों था !

३०

बात जो कहने की थी होंठों पे लाकर रह गये
आपकी महफ़िल में हम ख़ामोश अक्सर रह गये
एक दिल की राह में आया था छोटा-सा मुक़ाम
हम उसीको प्यार की मंज़िल समझकर रह गये
यों तो आने से रहे घर पर हमारे एक दिन
उम्र भर को वे हमारे दिल में आकर रह गये
क्यों किया वादा नहीं था लौटकर आना अगर !
इस गली के मोड़ पर हम ज़िंदगी भर रह गये
रौंदकर पाँवों से कहते-'खिल न क्यों पाते, गुलाब!'
दंग हम तो आपकी इस सादगी पर रह गये

३१

प्यार औरों से नहीं, हमसे अदावत न सही
है तो शोख़ी ये निगाहों की, शरारत न सही
लीजिए हम वो मुकदमा ही उठा लेते हैं
अपनी क़िस्मत ही सही, आपकी आदत न सही
आप आयें न अगर हमको बुला सकते हैं
हमको फ़ुरसत है बहुत, आपको फ़ुरसत न सही
दिल में जो आपकी तस्वीर उतर आयी है
रंग तो प्यार का उसमें है, हक़ीक़त न सही
उनके गमले में तो हर रोज ही खिलता है, गुलाब !
न हुई तेरी अगर बाग़ में इज्जत, न सही

३२

कोई दिल में आकर चला जा रहा है
निगाहें मिलाकर चला जा रहा है
हज़ारों थे वादे, हज़ारों थीं कसमें
मगर सब भुलाकर चला जा रहा है
जो पूछा भी उससे कि फिर कब मिलोगे
तो बस मुस्कुराकर चला जा रहा है
जिसे देखने को खड़ा था ज़माना
वो परदा गिराकर चला जा रहा है
गुलाब! आप जिसके लिये खिल रहे थे
वहीं मुँह फिराकर चला जा रहा है

३३

खुलके आओ तो कोई बात बने
रुख़ मिलाओ तो कोई बात बने
हमने माना कि प्यार है हमसे
मुँह पे लाओ तो कोई बात बने
बात क्या राह में बनेगी भला !

घर पे आओ तो कोई बात बने
रात गीतों की और ऐसे तार !
सुर मिलाओ तो कोई बात बने
यों तो बातें बना रहे हैं गुलाब
तुम बनाओ तो कोई बात बने

३४

ज़िंदगी फिर कोई पाते तो और क्या करते !
आपसे दिल न लगाते तो और क्या करते !
आपके प्यार की पहचान माँगते थे लोग
सर हम अपना न कटाते तो और क्या करते !
दिल जो टूटा तो हरेक शहर में ख़ुशबू फैली
फूल भी हम जो खिलाते तो और क्या करते !
उनकी नज़रों से छिपाकर उन्हीं से मिलना था
हम ग़ज़ल बनके न आते तो और क्या करते !
पंखड़ी दिल की कोई चूमने आया था, गुलाब !
आप नज़रें न झुकाते तो और क्या करते !

३५

कहें जो 'हाँ' तो नहीं है 'हाँ' भी, 'नहीं' कहें तो 'नहीं' नहीं है
भले ही आँखों से हैं वे ओझल, खनक तो पायल की हर कहीं है
वे मिल तो लेते हैं आँखों-आँखों, नहीं भी दिल में जो कुछ कहीं है
शराब प्याले में हो न हो, पर, नशा तो पीने में कम नहीं है
गये जो आने का वादा करके, चले भी आयें कि वक्त कम है
हदें भी हों ज़िंदगी की आगे, क़रार मिलने का पर यहीं है
क़सूर है मेरे देखने का, कि है तेरा आइना ही झूठा
कभी जो तू था तो मैं नहीं था, अभी जो मैं हूँ तो तू नहीं है
हरेक सुबह आके पोंछता है, गुलाब ! कोई तुम्हारे आँसू
भले ही पाँवों का धूल पर कुछ निशान उसका नहीं कहीं है

३६

उनसे इस दिल की मुलाकात अभी आधी है
चाँद ढलता हो मगर रात अभी आधी है
तेरा उठने का इशारा तो समझते हैं हम
पर तेरे प्यार की सौगात अभी आधी है
कुछ कहे कोई, हमें लौटके आना है यहाँ
दिल ये कहता है, मुलाक़ात अभी आधी है
यों तो कहती है अदा आपकी सब कुछ हमसे
पर निगाहों में कोई बात अभी आधी है
हम तो मानें जो बरस जायँ वे आँखें भी, गुलाब!
तेरे आँसू की ये बरसात अभी आधी है

३७

तेरा दर छोड़के जाने का कभी नाम न लूँ
यों पिला दे कि कहीं और सुबह-शाम न लूँ
मुझको नस-नस के चटकने का हो रहा है गुमान
हुक्म तेरा है कि दम भर कहीं आराम न लूँ
यों न लहरा मेरी आँखों में सुनहला आँचल
मैं हूँ मदहोश, कहीं बढ़के इसे थाम न लूँ!
तू मेरे प्यार की धड़कन तो समझता है जरूर
मैं भले ही कभी होंठों से तेरा नाम न लूँ
यह तो बतला कि खिलाये हैं भला क्यों ये गुलाब
है अगर ज़िद ये तेरी, इनसे कोई काम न लूँ।

३८

कभी पास आ रही है, कभी दूर जा रही है
ये नज़र है प्यार की जो मुझे आज़मा रही है
ये घुटा-घुटा-सा मौसम, ये रुकी-रुकी हवाएं
मेरे पास बैठ जाओ, मुझे नींद आ रही है
कभी बाग़ में खिलेंगे, जो गुलाब भी हज़ारों
ये महक कहाँ मिलेगी जो ग़ज़ल में छा रही है!

३९

ऐसी बहार फिर नहीं आयेगी मेरे बाद
कोयल भले ही कूक सुनायेगी मेरे बाद !
कुछ तो रहेगा दिल में कसकता हुआ जरूर
माना कि मेरी याद न आयेगी मेरे बाद
मुझसे मिला था रूप की चितवन को बाँकपन
दुनिया किसे ये रंग दिखायेगी मेरे बाद !
यह बेबसी की रात, ये बेचैनियाँ, ये ग़म
यह प्यार की जलन कहाँ जायेगी मेरे बाद !
आँखें उठाके आज न देखो गुलाब को
ख़ुशबू मगर न दूसरी भायेगी मेरे बाद

४०

आज हो चाहे दूर भी जाना, मेरे साथी, मेरे मीत !
लौटके फिर इस राह से आना, मेरे साथी, मेरे मीत !
कठपुतली का खेल दिखाने कोई हमें लाया था यहाँ
प्यार तो बस था एक बहाना, मेरे साथी, मेरे मीत !
झाँझर नैया, डाँड़ें टूटीं, नागिन लहरें, तेज़ हवा
टिक न सकेगा पाल पुराना, मेरे साथी, मेरे मीत !
यों तो हरेक झोंके से हवा के, प्यार की ख़ुशबू आती थी
दिल ने तुम्हीं को एक था माना, मेरे साथी, मेरे मीत !
मिल भी गये फिर आते-जाते, मिलके निगाहें फेर भी लो
गंध गुलाब को भूल न जाना, मेरे साथी, मेरे मीत !

४१

कभी बेसुधी में रुके नहीं, कभी भीड़ देखके डर गये
तेरा प्यार दिल में लिये भी हम, तेरे सामने से गुज़र गये
तू भले ही रात न था कहीं, वो वहम भी था तो बुरा नहीं
कि कभी हमारे करीब ही, तेरे पाँव आके ठहर गये

कभी, हमसफ़र! यहाँ हम न हों, तेरी चितवनें भी ये नम न हों
ये अदाएं प्यार की कम न हों, कभी हम भी जिनमें सँवर गये
हमें दोस्तों ने भुला दिया, हमें वक्त ने भी दगा दिया
उन्हें ज़िंदगी ने मिटा दिया, जो निशान दिल में उभर गये
वे भले ही हँसके भी मिल रहे, न भरे वे प्यार के दिल रहे
जो कभी थे होंठ पे खिल रहे, वे गुलाब आज किधर गये !

४२

जो भी जितनी दूर तक आया उसे आने दिया
भेद अपने दिल का उसने कब मगर पाने दिया !
उफ रे ख़ामोशी ! नहीं आती कोई आवाज़ भी
हमने हर पत्थर से अपने सर को टकराने दिया
बेसुधी में काटता चक्कर रहा फिर रात भर
अपने होंठों तक ये प्याला तुमने क्यों आने दिया !
आँधियो ! हाज़िर है अब यह फूल झड़ने के लिये
यह मिहरबानी बहुत थी हमको खिल जाने दिया
प्यार करने का भी उनका ढंग है अच्छा, गुलाब !
ऐसे नाज़ुक फूल को काँटों से बिँधवाने दिया !

४३

दिन ज़िंदगी के यों भी गुज़र जायँ तो अच्छा
हम इस ख़ुशी के दौर में मर जायँ तो अच्छा
यों तो न रुक सकी कभी कूची तेरी, रँगसाज !
फिर भी कभी ये हाथ ठहर जायँ तो अच्छा
मज़मा उठा-उठा है, झुकी आ रही है शाम
मेले से हम अब लौट के घर जायँ तो अच्छा
चरणों में बिछी उनके पँखुरियाँ गुलाब की
कुछ आख़िरी घड़ी में सँवर जायँ तो अच्छा

४४

धोखा कहें, फ़रेब कहें, हादसा कहें
इस ज़िंदगी को क्या न कहें, और क्या कहें !
कहने से बेवफ़ा तो बुरा मानते हो तुम
अब तुमको बेवफ़ा न कहें, और क्या कहें !
ख़ुद बेहिसाब, हमसे हरेक बात का हिसाब
तुमको अगर ख़ुदा न कहें और क्या कहें !
कहते हैं वे कि बाग़ में पतझड़ है अब गुलाब !
हम तुमको 'अलविदा' न कहें और क्या कहें !

४५

पीने की देर है न पिलाने की देर है
प्याला हमारे हाथ में आने की देर है
है सैकड़ों सवाल, हज़ारों शिकायतें
होली पे उनको सामने पाने की देर है
मंज़िल हरेक क़दम पे है इस दिल की राह में
बेगानगी का परदा हटाने की देर है
देखेंगे सर को गोद में हम उनकी रात भर
बेहोश हो के होश में आने की देर है
दम भर में बदल जायगी रंगत तेरी, गुलाब !
उनके ज़रा निगाह उठाने की देर है

४६

ख़त्म रंगों से भरी रात हुई जाती है
ज़िंदगी भोर की बारात हुई जाती है
उनको छुट्टी नहीं मेंहदी के लगाने से उधर
और इधर अपनी मुलाक़ात हुई जाती है
भूलता ही नहीं कहना तेरा नम आँखों सेह
'अब तो रुक जाइए, बरसात हुई जाती है'

यों तो, दुनिया ! तेरी हर चाल समझते हैं हम
ख़ुद ही बाज़ी ये मगर मात हुई जाती है
उनके आगे नहीं मुँह खोल भी पाते हों गुलाब
आँखों-आँखों में ही कुछ बात हुई जाती है

४७

कोई मंज़िल नयी हरदम है नज़र के आगे
एक दीवार खड़ी ही रही सर के आगे
डाँड़ हम ख़ूब चलाते हैं, फिर भी क्या कहिए !
नाव दो हाथ ही रहती है भँवर के आगे
देखिए ग़ौर से जितना भी हसीन उतना है
एक जादू का करिश्मा है नज़र के आगे
यों तो चक्कर था सदा पाँव में दीवाने के
नींद क्या ख़ूब है आयी तेरे दर के आगे !
ज़ोर चलता नहीं क़िस्मत की हवाओं पे, गुलाब !
जैसे चलती नहीं तिनके की लहर के आगे

४८

प्यार की हमको ज़रूरत कभी ऐसी तो न थी !
भूलने की उन्हें आदत कभी ऐसी तो न थी !
हमने माना इसी मंज़िल को तरसते थे फूल
पर बहारों की भी सूरत कभी ऐसी तो न थी
ज़िंदगी ख़ुद ही उतरती गयी है प्याले में
वरना पीने की हमें लत कभी ऐसी तो न थी !
क्या हुआ आ गया हल्का-सा जो रंग आँखों में !
आपको हमसे शिकायत कभी ऐसी तो न थी !
हमने धरती पे सिसकते हुए देखे हैं गुलाब
मालियो ! बाग़ की हालत कभी ऐसी तो न थी !

४९

हरेक सवाल पे कहते हो कि यह दिल क्या है
तुम्हीं बताओ, मेरे प्यार की मंज़िल क्या है
हमने माना कि तुम्हारे सिवा नहीं है कोई
फिर ये प्याला, ये शराब और ये महफ़िल क्या है ?
ज़िंदगी सच है, मिली दर्द की लज्जत के लिए
कोई यह भी तो कहे, दर्द का हासिल क्या है
यों तो आसान नहीं प्यार की धड़कन सुनना
तार दिल के जो मिले हों तो ये मुश्किल क्या है !
रौंद डाली हैं पँखुरियाँ तेरी पाँवों से, गुलाब !
उसने देखा भी न झुककर कि मुक़ाबिल क्या है

५०

फिर-फिर वही धुन लेकर यों किसने पुकारा है।
लगता है, उन आँखों में रुकने का इशारा है
यादें ही ग़नीमत हैं इन प्यार की राहों में
बिछड़े हुए साथी से मिलना न दुबारा है
हम डाँड़ चलाते हैं, तुम पार लगा देना
यह काम हमारा था, वह काम तुम्हारा है
क्या प्यार को समझें हम, क्या रूप को देखें हम
एक जान हमारी है, एक जान से प्यारा है
उलझा था कभी इनमें आँचल तो गुलाब ! उनका
अब डाल का काँटा ही जीने का सहारा है

५१

लगा कि अब तेरी बाँहों में कोई और भी है
हमीं हों दिल में, निगाहों में कोई और भी है
ये कौन रात तड़पता रहा है काँटों पर!
निशान फूल की राहों में कोई और भी है

जवाब जिसका नहीं आज तक हुआ मालूम
सवाल उनकी निगाहों में कोई और भी है
पता नहीं कि उधर बेबसी में क्या गुज़री !
शरीक दिल के गुनाहों में कोई और भी है
ख़बर किसे है, हवाओं के मन में क्या है गुलाब !
छिपा बहार की छाँहों में कोई और भी है

५२

तुम्हें प्यार करने को जी चाहता है
फिर एक आह भरने को जी चाहता है
बड़े बेरहम हो, बड़े बेवफ़ा हो
करें क्या जो मरने को जी चाहता है!
कहें क्या तुम्हें ! ज़िंदगी देनेवाले !
कि जी से गुज़रने को जी चाहता है
मना है जिधर ये निगाहें उठाना
उधर पाँव धरने को जी चाहता है
खिले हैं गुलाब आज होंठों पे उनके
कोई जुर्म करने को जी चाहता है

५३

दर्द कुछ और सही, दिल पे सितम और सही
आपको इसमें ख़ुशी है तो ये ग़म और सही
ज़िंदगी रेत के टीलों में गुज़ारी हमने
इस बयाबान में दो-चार क़दम और सही
है जो धोखा ही सरासर हरेक अदा उनकी
हमको यह प्यार का थोड़ा सा भरम और सही
ख़ुशनसीबी है कि इस दौर में शामिल भी हैं हम
बेरुख़ी हम पे, इन आँखों की कसम, ओर सही
वे भी दिन थे कि निगाहों में खिल रहे थे गुलाब
आज कहते हैं हमें और तो हम और सही

५४

तेरी अदाओं का हुस्न तो हम, छिपा के ग़ज़लों में रख रहे हैं
मगर कुछ अपने भी प्यार के ग़म, छिपा के ग़ज़लों में रख रहे हैं
कभी तो पहुँचेंगी तेरे दिल तक, हवा में उड़ती हुई ये तानें
हम अपनी दीवानगी का आलम, छिपा के ग़ज़लों में रख रहे हैं
बिके तो राहों में ज़िंदगी की, न भूल पाये हैं पर तुझे हम
ख़ुद अपनी उस ख़ुदकुशी का मातम, छिपा के ग़ज़लों में रख रहे हैं
जो तू सुरों में सजा रहा है, हमारे सीने की धड़कनों को
तो हम भी तेरे ही दिल का सरगम, छिपा के ग़ज़लों में रख रहे हैं
भले ही दामन छुड़ा रही अब, फिराके मुँह बेवफ़ा जवानी
हसीन रंगों का हम वो मौसम, छिपा के ग़ज़लों में रख रहे हैं
कहाँ है कागज़ में रंगो-बू वह, क़लम की जादूगरी तुम्हारी !
गुलाब ! तुमने कहा था हरदमइ 'छिपा के ग़ज़लों में रख रहे हैं'

५५

कभी दो क़दम, कभी दस क़दम, कभी सौ क़दम भी निकल सके
मेरे साथ उठके चले तो वे, मेरे साथ-साथ न चल सके
तुझे देखे परदा उठाके जो किसी दूसरे की मजाल क्या !
ये तो आइने का कमाल है कि हजार रंग बदल सके
तेरे प्यार में है पहुँच गया, मेरा दिल अब ऐसे मुक़ाम पर
कि न बढ़ सके, न ठहर सके, न पलट सके, न निकल सके
मेरी ज़िंदगी है बुझी-बुझी, मेरे दिल का साज़ उदास है
कभी इसको ऐसी खनक तो दे, तेरे घुँघरुओं पे मचल सके
जो खिले थे प्यार के रंग सौ, कभी पँखुरियों में गुलाब की
उन्हें यों हवा ने उड़ा दिया कि पता भी आज न चल सके

५६

प्यार की हम तो इशारों से बात करते हैं
फूल जिस तरह बहारों से बात करते हैं
कुछ तो है और भी इन ख़ाक के पुतलों में ज़रूर
होके जुगनू भी सितारों से बात करते हैं
हम जिसे अपना समझ लें वो कोई और ही है
यों तो करने को हज़ारों से बात करते हैं
अब ये छोटा-सा सफ़र ख़त्म हुआ ही समझें
बुलबुले उठके किनारों से बात करते हैं
दो घड़ी आपकी नज़रों पे चढ़ गये थे गुलाब
रात भर चाँद-सितारों से बात करते हैं

५७

कुछ और चाँद के ढलते सँवर गयी है रात
हमारे प्यार की ख़ुशबू से भर गयी है रात
कोई तो और भी महफ़िल वहाँ सजी होगी
उठाके चाँद-सितारे जिधर गयी है रात
ये शोख़ियाँ, ये अदायें कहाँ थीं दिन के वक्त !
कुछ और आप पे जादू-सा कर गयी है रात
हथेलियों में हमारी है चाँद पूनम का
किसीकी शोख़ लटों में उतर गयी है रात
मिला न कोई महक दिल की तोलनेवाला
गुलाब ! आपकी यों ही गुज़र गयी है रात

५८

प्यार का रंग हज़ारों से अलग होता है
यह इशारा कभी यारों से अलग होता है
यों तो रहती है हरेक फूल की रंगत में बहार
फूल का रंग बहारों से अलग होता है

दिल हरेक चाँद-सी सूरत पे मचलता है, मगर
कोई इन चाँद-सितारों से अलग होता है
है धुआँ आज नदी पर, जला के नाव अपनी
दिलजला कौन किनारों से अलग होता है !
वे न देखें तुझे, यह बात है कुछ और, गुलाब !
वरना यह रंग हज़ारों से अलग होता है

५९

जीने का कोई हासिल न मिला आख़िर यह उम्र तमाम हुई
फिर दिन निकला, फिर रात ढली, फिर सुबह हुई फिर शाम हुई
फूलों से लदा था बाग़ जहाँ हम-तुम कल झूमते आये थे
अब राम ही जाने, कब इसकी पत्ती-पत्ती नीलाम हुई !
था फासला चार ही अंगुल का, हाथों से किसीके आँचल का
वे सामने पर आये न कभी, सजने ही में रात तमाम हुई
कल भूल से हमने डाल में से एक फूल गुलाब का तोड़ लिया
सुनते हैं, इसी एक बात पे कल, वह डाल बहुत बदनाम हुई

६०

यों तो सभी से मेल-मुहब्बत है राह में
हरदम रहा है पर तेरा दर ही निगाह में
क्या-क्या न लेके आये ग़ज़ल में सवाल हम !
सबका जवाब उसने दिया एक 'वाह' में
तुझसे बड़ी भी चीज़ है कुछ तुझमें, ज़िंदगी !
तड़पा किये हैं हम जिसे पाने की चाह में
आते न छोड़कर कभी हम जिसको उम्र भर
मंज़िल कोई ऐसी भी एक आयी थी राह में
क्या कद्र तेरी ज़र्द पँखुरियों की हो, गुलाब !
ख़ुशबू तो लुट चुकी है किसी ऐशगाह में

६१

तुझसे लड़ जाय नज़र, हमने ये कब चाहा था !
प्यार भी हो ये अगर, हमने ये कब चाहा था !
दोस्ती में गले मिलते थे हम कभी, लेकिन
हो तेरी गोद में सर, हमने ये कब चाहा था !
यों तो मंज़िल पे पहुँचने की ख़ुशी है, ऐ दोस्त !
खत्म हो जाय सफ़र, हमने ये कब चाहा था !
तुझसे मिलने को लिया भेस था दीवाने का
उठके आया है शहर, हमने ये कब चाहा था !
जब कहा उनसे- 'मिटे आपकी चाहत में गुलाब'
हँसके बोले कि मगर हमने ये कब चाहा था !

६२

दिये तो हैं रोशनी नहीं है, खड़े हैं बुत ज़िंदगी नहीं है
ये कैसी मंज़िल पे आ गये हम, कि दोस्त हैं, दोस्ती नहीं है
चमक रहे हैं हज़ारों तारे, भले ही है चाँद और सूरज
तलाश है जिस किरन की हमको, बस एक समझो वही नहीं है
बुझा-बुझा, सर्द-सर्द-सा कुछ, है अब भी सीने में दर्द-सा कुछ
पड़े हैं मुँह ढँकके हम भले ही, मगर तबीयत भरी नहीं है
हम अक्श हैं तेरे आइने के, कभी तो बढ़कर गले लगा ले
रहे हों ख़ामोश, प्यार की पर हमारे दिल में कमी नहीं है
गुलाब ! जिसने भी हँसके देखा, उसीके तुम उम्र भर रहे हो
जो सच कहें तो सभी हैं अपने, यहाँ कोई अजनबी नहीं है

६३

दिन गुज़रते गये, रात होती रही
ज़िंदगी ख़ुद-ब-ख़ुद मात होती रही
प्यार की कोई ख़ुशियाँ मनाता रहा
और आँखों से बरसात होती रही

हम ग़ज़ल में उसीको उतारा किये
टीस-सी दिल में जो, रात, होती रही
हमने देखी न उनकी झलक आज तक
और हरदम मुलाक़ात होती रही
लाख थी बोलने की मनाही, गुलाब !
भेंट फिर भी ये सौगात होती रही

६४

आप और घर पे हमारे, क्या ख़ूब !
दिन में उग आये हैं तारे, क्या ख़ूब !
हमने सूरत भी न देखी उनकी
दिल में रहते हैं हमारे, क्या ख़ूब !
हम खड़े हैं लहर पे बुत की तरह
और बहते हैं किनारे, क्या ख़ूब !
आख़िर आ ही गये हम आपके पास
एक तिनके के सहारे, क्या ख़ूब !
उनकी आँखों में खिल रहे थे गुलाब
हमने काग़ज़ पे उतारे, क्या ख़ूब !

६५

क्या छिपी है अब हमारे दिल की हालत आपसे !
कुछ तो ऐसा हो कि हो मिलने की सूरत आपसे
ख़ाक के पुतलों में क्या है और इस दिल के सिवा !
दिल की रंगत ग़म से है, ग़म की है रंगत आपसे
दो घड़ी हँस-बोल लेना भी ग़नीमत जानिए
ज़िंदगी देती है कब मिलने की मुहलत आपसे !
वह ग़ज़ल के नुक्ते-नुक्ते से है दुनिया पर खुली
लाख हम इस दिल की बेताबी कहें मत आपसे
कब भला इस बाग़ की हद से निकल पाये गुलाब !
आप तक आये हैं चलकर, होके रुख़सत आपसे

६६

चैन न आया दिल को घड़ी भर, हरदम वार पे वार हुए
आपने प्यार का खेल किया हो, हम तो बहुत बेज़ार हुए
तीर तो थे तरकश में हज़ारों, चल भी गये कुछ चल न सके
टूट के उन क़दमों में गिरे कुछ, कुछ है दिलों के पार हुए
हम न रहे तो कौन भला ये शोख़ अदाएँ देखेगा !
बाग़ की सब रंगत है हमींसे, फूल भले ही हज़ार हुए
एक हमींको क्यों दुनिया ने दीवाने का नाम दिया
जब कि हमारी हर धड़कन में आप भी हिस्सेदार हुए !
अपनी पँखुरियों को छितराकर, आज गुलाब ये कहता था–
'खूब जिन्हें खिलना हो खिलें अब, हम तो हवा पे सवार हुए'

६७

तेरी बेरुख़ी ने मुझको ये हसीन ग़म दिया है
मेरा दिल जलानेवाले ! तेरा लाख शुक्रिया है
मेरी एक ज़िंदगी को नहीं कम है यह भरम भी
कि कभी नज़र से तूने मुझे अपना कह दिया है
जो लिखा है सच ही होगा, तुझे ग़म नहीं है कोई
ये बता कि कह रहा क्या तेरे ख़त का हाशिया है
वो नज़र से जानेवाला, मेरे दिल में आके बोला–
'सभी कुछ वही है, हमने जरा घर बदल लिया है'
तेरे नाम की है ख़ूबी कि गुलाब ! हर सुबह को
किसी बेरहम ने दिल में, तुझे याद तो किया है

६८

हमारी ज़िंदगी ग़म के सिवा कुछ और नहीं
किसीके जुल्मो-सितम के सिवा कुछ और नहीं
समझ लें प्यार भी हम उस नज़र की शोख़ी को
मगर ये अपने भरम के सिवा कुछ और नहीं

वो जिसको आख़िरी मंज़िल समझ लिया तूने
वो तेरे अगले क़दम के सिवा कुछ और नहीं
टिका है दम ये किस उम्मीद पे, पूछो उनसे
यहाँ, जो कहते हैं – 'दम के सिवा कुछ और नहीं'
समझता है जिसे ख़ुशबू, गुलाब ! तू अपनी
वो एक हसीन वहम के सिवा कुछ और नहीं

६९

आ, कि अब भोर की यह आख़िरी महफ़िल बैठे
पहले तू बैठ, तेरे बाद मेरा दिल बैठे
तेरी दुनिया थी अलग, तेरे निशाने थे कुछ और
क्या हुआ, हम जो घड़ी भर को कभी मिल बैठे !
मैं सुनाता तो हूँ, ऐ दिल ! उन्हें यह प्यार की तान
पर सुरों का वहीं अंदाज़, है मुश्किल, बैठे
दो घड़ी चैन से बैठे नहीं हम यों तो कभी
देखिए, क्या भला इस दौड़ का हासिल बैठे
रंग खुलता है तभी तेरी पँखुरियों का, गुलाब !
जब कोई लेके इन्हें, उनके मुकाबिल बैठे

७०

जो यहाँ पे आये थे सैर को, नहीं फिर वे लौटके घर गये
जो कहीं न ठहरे थे उम्र भर, वे यहाँ पहुँचके ठहर गये
जो ये रट लगाते थे हर घड़ी, कि कसम न टूटेगी प्यार की
वही सामने से अभी-अभी, बड़ी बेरुख़ी से गुज़र गये
न चमक है मुँह पे न कोई लय, नहीं अलविदा का भी होश है
ये सफ़र वे कैसे करेंगे तय, जो क़दम उठाते ही डर गये !
जो गये हैं आज यों छोड़कर, खड़े होंगे वे किसी मोड़ पर
कई बार पहले भी दौड़कर, थे ढलान पर से उतर गये
यहाँ हर तरफ है धुआँ-धुआँ, रहे हम तो कैसे रहें यहाँ !
थी हसीन जिनसे ये बस्तियाँ, वे गुलाब आज किधर गये ?

७१

साथ हरदम भी बेनकाब नहीं
खूब पर्दा है यह, जवाब नहीं
कैसे फिरसे शुरू करें इसको।
जिंदगी है, कोई किताब नहीं
क्यों दिये पाँव उसके कूचे में
नाज उठाने की थी जो ताब नहीं।
आपने की इनायतें तो बहुत
गम भी इतने दिये, हिसाब नहीं
मुस्कुराने की बस है आदत भर
अब इन आखों में कोई ख्वाब नहीं
मेरे शेरों में जिंदगी है मेरी
कभी सूखें ये, वे गुलाब नहीं

७२

फिर इस दिल के मचलने की कहानी याद आती है
मुझे फिर आज अपनी नौजवानी याद आती है
बहुत कुछ कहके भी उससे न कह पाया था प्यार अपना
तपिश सीने की बस आखों में लानी याद आती है
'कहा क्या ! कल कहूँगा क्या ! न यह कहता तो क्या कहता !'
यही सब सोचते रातें बितानी याद आती है
शरारत की हँसी आखों में दाबे, नासमझ बनती
मेरी चुप्पी पे उसकी छेड़खानी याद आती है
भुला पाता नहीं मैं पोंछना काजल पलक पर से
लटें आवारा उस रुख से हटानी याद आती है
कभी गाने को कहते ही लजाकर सर झुका लेना
गुलाब अब भी किसीकी आनाकानी याद आती है

७३

कभी धड़कनों में है दिल की तू, कभी इस जहान से दूर है
ये कमाल है तेरे हुस्न का कि नजर का मेरी फितूर है !
तू भले ही हाथ न थाम ले, कभी मुझको अपना पता तो दे
कि भटक न जाऊँ मैं राह में, तेरा दर बहुत अभी दूर है
जो ख़याल में भी न आ सके, उसे प्यार भी कोई क्या करें !
तू खुदा भले ही रहा करे, मुझे नाखुदा पे गरूर है
इसे देखना भी नहीं था जो, तो जलाई थी ये शमा ही क्यों !
मेरे दिल को भा गयी इसकी लौ तो बता, ये किसका कसूर है
जिसे तूने था कभी छू दिया, वो गुलाब और गुलाब था
कहूँ अपने दिल को मगर मैं क्या जो नशे में आज भी चूर है !

७४

अब कहाँ चाँद-सितारे हैं नजर के आगे !
बस उस तरफ के किनारे हैं नजर के आगे
कोई कुछ भी कहे, हमने तो वही देखा है
ख्वाब ही ख्वाब ये सारे हैं नजर के आगे
तू भले ही है छिपा रंगमहल में अपने
तेरे पायोश तो, प्यारे ! हैं नजर के आगे
कौन कहता है तुझे प्यार नहीं है हमसे !
क्यों ये रह-रहके इशारे हैं नजर के आगे !
कभी खुसबू से ये दिल उनका भी छू लेंगे, 'गुलाब'
रंग तूने जो पसारे हैं नजर के आगे

•

उर्दू ग़ज़ल

अनुक्रम

यह सदा आती है आधी /१२३
जमाले-हुस्न है कुछ तो /१२३
इस कदर बहरे-खुदी /१२४
साज यों छू कि हरेक /१२४
मैं हूँ इस बाग़े-जहाँ /१२५
ऐसे तो हुआ ही करती है /१२५
गुलों के बदले शिगुफ्ता हैं... /१२६

१

यह सदा आती है आधी रात को उस पार से
मरके भी राहत नहीं मिलती खयाले-यार से
गुल से क्या निस्बत मुझे, कैसी गुजारिश खार से
कतरए-शबनम हूँ लो रुखसत हुआ गुलजार से
इंतजारों में गँवा दी जिंदगानी नामुराद
यह न समझे, खामुशी थी दो कदम इकरार से
चाक कर देगी कजा दम में, नहीं मालूम यह
सी रहा हूँ दामने-हस्ती हवा के तार से
ऐसी शर्मीली निगाहें, ऐसा अलसाया शबाब
चाँदनी जैसे बुलाती हो समंदर पार से
हुस्न की तो हद नजर तक, इन्तहा क्या इश्क की
लज्जते दीदार-कम है हसरते-दीदार से
दिल की धड़कन तेज कुछ हो ही गयी तो क्या हुआ
काँप उठती है क़यामत भी तेरी रफ़्तार से

•

२

जमाले-हुस्न है कुछ तो गरूर होगा ही
पिया है जामे-मुहब्बत शरूर होगा ही
छिपा रहेगा निगाहों से मेरी तू कब तक
कभी तो जल्वये-दीदारे-तूर होगा ही
जिंदगी ख्वाब में देखा हुआ अफ़साना है
हवा का शीशमहल है कि चूर होगा ही
प्यार का लमहा गनीमत है उम्रे-रक्सां में
है जो आँखों में, निगाहों से दूर होगा ही

•

३

इस क़दर बहरे-खुदी में डूबता जाता हूँ मैं
जिस तरफ फिरती निगाहें, बस नजर आता हूँ मैं
यह हवस कैसी कि बढ़ता ही चला जाता हूँ मैं
दूर हो जाती है मंजिल पास जब आता हूँ मैं
खौफ़े गुलचीं ही नहीं हर फूल में काँटा यहाँ
इस चमन में आशियाना करके पछताता हूँ मैं
जामे-हस्ती तोड़कर अंजामे-हस्ती तोड़कर
एक कतरा था, समंदर बनके लहराता हूँ मैं
एक दिल, उस पर हजारों नाज-अंदाजों का बोझ
एक शीशा हूँ कि हर पत्थर से टकराता हूँ मैं

•

४

साज यों छू कि हरेक तार रगे-जाँ हो जाय
सोजे-दिल इस तरह उभरे कि चिरागाँ हो जाय
यों तड़पने को तो तड़पा ही किये हम दिन-रात
गम वही गम है जो आलम में नुमायाँ हो जय
मैं गुलिस्ताँ में भी बैठूं तो बयावाँ-सा लगे
तुम बयावाँ में भी बैठो तो गुलिस्ताँ हो जाय
मैं कहाँ और कहाँ ये गमे-दुनिया के बवाल
जिंदगी है कि हरेक हाल में आसाँ हो जाय
फायदा कुछ नहीं इस इल्मो-हुनर का, साकी !
जाम उसका है कि तू जिस पे मिहरवाँ हो जाय
हम तेरे इश्क में में मर-मरके जिए जाते हैं
उसको मुश्किल नहीं कहते कि जो आसाँ हो जाय

•

५

मैं हूँ इस बाग़े-जहाँ का रंगोबू हुस्नोजमाल
जल रही है मेरे दम से चाँद, सूरज की मशाल
जिस हसीं सूरत पे अपनी नाज़ करती ज़िंदगी
मौत ले जाती भरी महफ़िल से दम भर में उछाल
कैसी कैसी शै तुझे सौंपी है हमने ऐ अज़ल
अपने घर को फूँक तुझको कर दिया है मालोमाल
यों तो हर आग़ाज़ का अंजाम आख़िर मौत है
मरके भी मरते नहीं लेकिन कभी अहले कमाल
ढूँढ़ते हैं राख मेरी आबे गंगा छानकर
आके भी किस वक्त आया उनको मिलने का ख़याल

•

६ (होली में)

ऐसे तो हुआ ही करती है हर बात निराली होली में
पर आपकी आँखों में देखी कुछ और ही लाली होली में
हाथों ने हवा के खींच लिया सीने से दुपट्टा पत्तों का
दुल्हन की तरह शर्मा के झुकी हर डाली डाली होली में
वह नीम की चश्मे नीम खुली, वह आम के मंजर का मंज़र
वे गुल ने खिलाये गुल क्या क्या, पामाल है माली होली में
कुछ ऐसी अदा से बल खाकर लहराती हुई चलती है हवा
पी सँग ससुराल को जाए दुल्हन, ज्यों उम्र की बाली, होली में
वह शायरे रंगी*, माहे सुखन, क्या तुमने उसे देखा ही नहीं
जन्नत से चुराकर ले आया फूलों की जो डाली होली में

* कवि का जन्म होली के पखवारे में हुआ था।

•

७

गुलों के बदले शिगुफ्ता हैं खार गुलशन में

हरेक गुंचा हुआ तार-तार गुलशन में
ये किस तरह की है या रब बहार गुलशन में
मैं उन तमाम हदों से गुजर चुका दिल की
किया था जिनसे गुलों ने सिंगार गुलशन में
जलाये जिसने जमाने में रंगों-बू के चिराग़
उसीके वास्ते काँटों का हार गुलशन में!
तलाश जिसकी है दिल को वही नहीं मिलता
खिला ही करते हैं गुल तो हजार गुलशन में
झुकी-झुकी-सी निगाहों से फूटती-सी हँसी
सहमती आती है जैसे बहार गुलशन में
हमारी आँख के आँसू भी रंग लाके रहे
हरेक गुंचा हुआ आबदार गुलशन में
मिले न फूल तो काँटों से भर चले दामन
किसी तरह से दिये दिन गुज़ार गुलशन में
बहार आ भी गयी है तो बस उन्हींके लिए
गुलों के बदले शिगुफ्ता हैं खार गुलशन में।

फुटकर शेर

(हिन्दी ग़ज़लों से)

यों तो मरती ही रही है ज़िंदगी
यह कभी मरने से जी जाती भी है

मोल कुछ भी न मोतियों का जहाँ
आँसुओं ने हँसी करायी क्यों

चाहिए आँख देखने के लिये
है जो परदे में बेनक़ाब भी है

इस तरफ एक किनारा है, मगर
उस तरफ कोई किनारा तो हो

उनके आँचल की मिल रही है हवा
बेसुधी बेअसर नहीं होती

अब तो छाया भी साथ छोड़ रही
धूप जीवन की सर पे आ ही गयी

रूप की सादगी पे मत जाएँ
दूध में थोड़ी सी शराब भी है

देवता हम नहीं, न पत्थर हैं
माफ़ कुछ तो है आदमी के लिए

वादा आने का कर गया था कोई
उम्रभर इंतज़ार करते हैं

अँधेरे ही अँधेरे होंगे आगे
पड़ाव अगला जहाँ कल शाम लेंगे

लाख तूफ़ान उठ रहे थे मगर
दिल को पत्थर बना के बैठ गए

कोई आएगा तड़के गुलाब
दिल से कह दो कि जगता रहे

उनके आने से आ गई है बहार
वर्ना हम तो गुलाब नाम के हैं

क्या हुआ, छू गयी जो लट उनकी
हम ज़रा छाँव पाके बैठ गए

न जिसके शुरू-आख़िरी के हैं पन्ने
क़िताब एक ऐसी पढ़े जा रहे हैं

जो सर फोड़ना ही रहा पत्थरों से
ये फूलों के दिल क्यों गढ़े रहे हैं

रात आया था लटें खोले कोई
फूल महका था रातरानी का

कोई था, जब नहीं था कोई
हमने मुड़कर पुकारा नहीं

शर्त है प्यार की एक ही
खुद तड़पिये तो तड़पाइये

कुछ तो है तेरी आँखों में प्यार
और कुछ है हमारा भरम

प्यार ने झट उन्हें पा लिया
साधना हाथ मलती रही

मेरी ग़ज़लों में ढूँढ़ लेना मुझे
नहीं कोई निशान हो भी तो

जिसमें हम-तुम भी छूटते पीछे
प्यार में ऐसा एक मुक़ाम भी है

जिन्हें देखकर था नशा चढ़ गया
वही कह रहे, पीके आये हैं हम

कौन जाए छोड़कर अब दर तेरा !
हमने यह माना कि मंजिल और है

नज़र उनसे छिपकर मिलाई गयी है
बचाते हुए चोट खाई गयी है

अँधेरा था दिल में, अँधेरा था घर में
कोई रूप की चाँदनी लेके आया

डूबने का मज़ा वे क्या जाने
जो किनारों की सैर करते हैं

है कोई इंतज़ार में हरदम
हम लिपटने की ताब तो लायें

इसी राह से ज़िंदगी जा चुकी है,
लकीरों पे दुनिया जो टूटे तो टूटे

हमसे किसीका प्यार छिपाया न जायगा
इतना हसीन बोझ उठाया न जायगा

बेझिझक, बेसाज़, बेमौसम के आ
ग़म की बारिश है तो आ, फिर जमके आ

वही हैं सभी प्यार की रंगरलियाँ
ये दुनिया भरी की भरी छूटती है

जहाँ किसी की नज़र भी नहीं लगे उसपर
तुम्हारे प्यार को ऐसे छिपाके रखा है

डरते हुए लहरों से जीना है कोई जीना !
बेजान किनारों से तूफ़ान ही अच्छे हैं

उदास साँझ, हवा सर्द है, बादल हैं घिरे
और परदेश के डेरे में बंद हैं हमलोग

ठुमरी-सी भैरवी की, खुमारी शराब की
दिल में है उनकी याद, कि खुशबू गुलाब की

यों तो खुशी के दौर भी आये तेरे बगैर
आँसू निकल ही आये मगर हर खुशी के साथ

हमारे प्यार की यह ताज़गी न कम होगी
किसी के रूप की जादूगरी रहे न रहे

चलते चलते मिल ही जायेंगे कभी
ज़िंदगी का ताना-बाना चाहिए

लो कसम, हमने अगर मुँह से लगाई हो शराब
यह बहाना था गले तुमको लगाने के लिए

हाथ में उनके ही नाड़ी है, देखिये क्या हो
जिनके छूने से ही धड़कन मेरी बढ़ जाती है

मेंहदी लगी हुई है उमंगों के पाँव में
सपने में भी तो आप से आया न जायगा

हमसे मिलिए तो आईने की तरह
प्यार टिकता नहीं दुराव के साथ

कभी वे मेरी, कभी अपनी तरफ़ देखते हैं
कभी तो तीर है दिल में कभी कमान में है

भला भले को, बुरे को बुरा समझते हैं
हम आदमी को ही लेकिन बड़ा समझते हैं

मिलेंगे हम जो पुकारेगा दुःख में कोई कभी
हरेक आँख के आँसू में है हमारा पता

नए सिरे से सजायेंगे ज़िंदगी को आज
फिर अपने पास बुला लो, बहुत उदास हूँ मैं

हमें मिटा तो रहे हो मगर रहे यह याद
इन्हीं लकीरों की हद में तुम्हारा प्यार भी है

मिलेगा चैन तो धरती की गोद में ही हमें
नजर की दौड़ सितारों के पार हो, तो हो

हुआ है प्यार भी ऐसे ही कभी साँझ ढले
कि जैसे चाँद निकल आये और पता न चले

हमें वो आँख दो, परदे के पार देख सकें
जो सामने से यह पर्दा उठा नहीं सकते

हो जाय बेसुरी मेरी साँसों की बाँसुरी
इस जिंदगी को दर्द भी इतना न दीजिए

मिले न हमको भले उनके प्यार की खुशबू
नजर से मिल ही लिया करते हैं गले से गले

कहाँ से लौ उतर आयी है इसको मत पूछो
तुम्हे तो बस की दिये से दिया जलाते चलो

कहते हो जिसको प्यार खुमारी थी नींद की
सपना चुराके लाये थे कोई कहीं से हम

उनका वादा सुबह-शाम टलता रहा
खत्म ऐसे ही कुल जिंदगी हो गयी

तेरा प्यार मिल भी जाये, तेरा रूप मिल न पाता
जो हजार बार मिलते, यही इंतजार होता

हमको सूरज-सा कभी देखा था उठते आपने
अब हमारे डूब जाने का भी मंज़र देखिए

हम पलटकर न कभी देखते, दुनिया की तरफ
आपने बीच का पर्दा तो उठाया होता

और तड़पायेंगी यादें हमें इन खुशियों की
आप क्यों हम पे यह एहसान किया चाहते हैं !

मिली है प्यार की खुशबू तो हर तरफ से हमें
भले ही बीच में परदे पड़े हैं झीने-से

हमारे सामने आने में भी झिझक थी जिन्हें
गले-गले हैं वही आज थोड़ी पीने से

देखकर ही जिसे आ जाती बहारों की याद
आँधियो ! फूल तो एक बाग में छोड़ा होता

इसपे मचले थे कि देखेंगे तड़पना दिल का
उनसे देखा न गया, हम से दिखाया न गया

तू जो पर्दा न उठाये तो यह किसका है कसूर
हमने यह रात लिखा दी है तेरे प्यार के नाम

यों चलाई थी छुरी उसने गलेपर हँसकर
हम ये समझे की अदा यह भी कोई प्यार की थी

उसको गुमनाम ही रहने दो, कोइ नाम न दो
वह जो खुशबू-सी निगाहों में इन्तजार की थी

कौन होता है बुरे वक्त में साथी किसका !
आइना भी ये दगाबाज बदल जाता है

सुनता हूँ दिल में और भी एक दिल की धड़कनें
मैं होके अकेला भी अकेला नहीं होता

मेरे प्यार की वजह से ये हुई है रंगसाजी
मेरी हर नजर से तेरी रंगत निखर गयी है

वे लटें थी रात किसकी मेरे बाजुओं पे बिखरी !
मेरे हर ख़याल में एक खुशबू-सी भर गयी है

हम चाहते हैं प्यार तेरा देख ले दुनिया
यह भी है पर ख़याल, कोई देखता न हो

हम उन्हें अपना तड़पना भी दिखाएँ कैसे !
दिल जो टूटे भी तो आवाज नहीं होती है

दिल लौटता रहा है टकराके हर नजर से
पत्थर बने शहर में हैं फिर गुलाब फूले

रूप मोहताज है बन्दों की नजर का लेकिन
बंदगी रूप की मोहताज नहीं होती है

चूक कुछ तो थी हुई राह की पहचान में ही
दूर हम प्यार की मंजिल से हर कदम हैं आज

उनसे मिलकर भी तड़पते हैं उनसे मिलने को
पास जितने भी जियादा हैं उतने कम हैं आज

चल तो रहे हैं चाल बड़ी सूझ-बूझ से
उठने को है बिसात मगर भूल रहे हैं

और होंगे तेरी महफ़िल में तड़पनेवाले
तू निगाहें भी फिरा ले तो चले जाएँ हम

डूबी है नाव अपने ही पाँवों की चोट से
हम नाचने लगे थे किनारों को देखकर

एक ही रात है, नींद एक है, बिस्तर है एक
एक आँखों का हो सपना मगर, आसान नहीं

काम अपना है उनको पहुँचाना
खत सभी दूसरों के नाम के हैं

मिले तो यों कि कोई दूसरा सहा न गया
गए तो ऐसे कि जैसे कभी रहे ही नहीं

माना की हम गले से गले मिल रहे हैं आज
यादों में तड़पने का मजा और ही कुछ है

जब डूबना है, क्यों भला माँझी का लें एहसान !
दो हाथ और पास किनारे हुए तो क्या !

सो न जाए कोई, चुप, करवटें बदलता हुआ
आख़िरी प्यार की है रात, करीब आ जाओ

सैकड़ों प्यार की दुनिया तबाह करके ही
एक इंसान की तकदीर बनायी जाती

तेरे आँचल का मिल गया है कफ़न
अब तो मरने का हम को गम न होगा

हम नहीं रहे तो क्या बहार मिट गयी !
बाग था छिपाए हुए और सौ गुलाब

हाथ भर दूर ही रहता है किनारा हरदम
हमको यह नाव चलाते ही हुई उम्र तमाम

है वही शोख हँसी मुँह पे शमा के अब भी
फर्क आया न कोइ मौत से परवाने की

सुबह जो एक भी मिलती है जिंदगी की हमें
तमाम उम्र की इस बंदगी से भारी है

हजार बार जिगर में समा चुके हैं, मगर
वे अजनबी से ही लगते रहे हैं सारी रात

यह जिंदगी है प्यार की मंजिल का एक पड़ाव
हाँ, यह जरूर है कि तड़पना है यहीं तक

कहीं पड़ाव के पहले ही नींद घेर न ले
कुछ और तेज सुरों में कदम बढ़ाते चलो

फूँक देना न इसे काठ के अम्बार के साथ
साज यह हमने बजाया है बड़े प्यार के साथ

कोई पहचाना हुआ चेहरा नहीं है भीड़ में
अब हमें भी अपने घर को लौट जाना चाहिए

तेरी आँखों से तेरे दिल का था कितना फासला !
पर यहाँ एक उम्र पूरी हो गयी चलते हुए

कसूर कुछ तेरे हाथों का भी तो है, फनकार !
करें भी क्या जो ये तस्वीर दिल को भा ही गयी !

वह भी ताकत न रही, चार कदम उठके चलूँ
हाय ! कब उनकी गली का पता चला है मुझे

तुझसे मिलकर तो बढ़ी है ये जलन, तू ही बता
और किस तरह लगी दिल की बुझायी जाती

मैं नहीं था फिर भी मुझको तेरा दिल पुकारता था
मेरा प्यार जी रहा था मेरी जिंदगी से पहले

राख पर अब उनकी लहरायें समन्दर भी, तो क्या !
सो गए जो उम्र भर हसरत लिये बरसात की

दिल में कुछ और भी यादों की कसक बढ़ जाती
तुम जो मिलते भी तो आखिर यही रोना होता

जब कयामत में ही होगा फैसला हर बात का
तू ही बतला हम तेरे वादों को लेकर क्या करें !

न यों मुँह फेर कर सो जा, मेरी तकदीर के मालिक !
कहानी जिंदगी की फिर से दुहरायी नहीं जाती

बहुत-से वक्त ऐसे भी कटे हैं जब कि घबराकर
ये सोचा मैंने मन में, मैं नहीं होता तो क्या होता !

पढ़ते हैं खत को हाथ में ले-लेके बारबार
शायद लिखा हो आपने शायद लिखा न हो

नहीं कोई भी मरने के सिवा अब काम बाकी है
हमारी जिंदगी की बस वही एक शाम बाकी है

फिर न लौटेंगे कभी इस बाग़ में जाकर गुलाब
देखना है उनको जितना आज जी भर देखिए

फिर से बिछुड़े हुए साथी जहाँ मिल जाते हों
दूर इस राह में ऐसा भी कोई होगा मुकाम !

कौन जाने उस तरफ कोई किनारा हो, न हो !
मिल भी जाओ आज कल मिलना हमारा हो, न हो

फ़िक्र क्या, अब तो नज़र आने लगा है उनका घर
बीच में बस मील के दो-चार पत्थर रह गये

यह किनारा फिर कहाँ ! यह साँझ, ये रंगीनियाँ !
नाव यह माना कि फिर इस घाट पर आने को है

आप क्यों दिल के तड़पने का बुरा मान गये !
आपसे कुछ नहीं कहते हैं, हम तो चुप ही हैं

क्या, किससे पूछिए कि जहाँ मुँह सिये हों लोग !
हैं नाम के ही शहर ये, वीरान बहुत हैं

यह तो अच्छा है कि बिस्तर लग गया है बाग़ में
हम कहाँ ये फूल पाते घर सजाने के लिये

वे लोग जा चुके जिन्हें फूलों से प्यार था
क़दमों पे अब ये बाग़ भी सारे हुए तो क्या !

मुझे यकीन है, जाकर भी मैं रहूँगा यहीं
मेरे हर लब्ज में धड़का करेगा दिल मेरा

देखिये, हमको कहाँ राह लिये जाती है
अब तो मंजिल भी यहाँ साथ ही चलती देखी

हम हैं कि जी रहें हैं तेरे झूठ को सच मान
वर्ना जो सच कहें, तेरे वादों में दम नहीं

यह साज बेसुरा भी गनीमत है, दोस्तो !
कल लाख पुकारे कोई, बोलेंगे हम नहीं

शुक्र है आप न लाये कभी प्याला मुझ तक
मेरी आदत थी बुरी, पीके बहक जाने की

हमने जिस ओर भी रक्खे थे बेसुधी में कदम
तूने उस ओर ही मंजिल का रुख सुधार लिया

कैसे अजनबी बने, हमसे पूछते हैं वे
अब भी तेरी तड़पनें कम न हों तो क्या करें !

जहाँ भी हमको मिली राह कोई जानी हुई
वहीं से पाँव को तिरछा हटाके रक्खा है

झलकता और ही उन पर है आज प्यार का रंग
किसीने दूध में केसर मिलाके छोड़ दिया

देखते-देखते आँखें चुरा गयी है बहार
याद भर रह गई फूलो के मुस्कुराने की

दिल में एक हूक-सी उठती है आईने को देख
क्या से क्या हो गये गर्दिश से हम जमाने की !

मंजिल भले ही, गर्द से पाँवों की, छिप गयी
मंजिल का एतबार कभी छिप नहीं सकता

अपनी नागिन सी लटें खोल दी होंगी उसने
हम न होंगे तो क़यामत नहीं आयी होगी

प्यार की दी है सज़ा हमको मगर यह तो कहो
क्या नहीं तुम भी हमेशा थे गुनहगार के साथ

फ़िक्र क्या तुझको, कहाँ तक जाएगा यह कारवाँ
बाँध ले बिस्तर मुसाफिर, तेरा घर आने को है

कौन रखता है यहाँ प्यार के वादों का हिसाब
आप नाहक हैं परेशान, कोई बात भी हो!

हुआ न कुछ भी कहीं मैं तो क्या हुआ इससे
और क्या होता एक क्षण में, जो हुआ सो ठीक

छोड़ दी सादी जगह खत में हमारे नाम पर
बेलिखे ही उसने जो कुछ लिख दिया, समझे हैं हम

कहाँ है प्यार की कसम, कहाँ हो तुम, कहाँ हैं हम
ढलान पर कदम-कदम, उतर रहा है कारवाँ

जिसे बेरुखी था समझा, वो नज़र थी बेबसी की
तेरी आँख भर ही आयी, मुझे छोड़ने से पहले

ये किस मंज़िल पे ले आयी है तू ऐ ज़िंदगी मुझको
कि अब सूरत भी मेरी मुझसे पहिचानी नहीं जाती

भले ही हम न हों जब प्यार की शहनाइयाँ गूँजे
तुम्हारे दिल में कोई दूसरा हो, हो नहीं सकता

चिराग बुझ न गये हों कहीं मकानों के
हवा में तैरती आती हैं सिसकियाँ कैसी

मुसाफिर राह में यों तो हजारों साथ चलते हैं
कोई जब दिल को छू जाये, हमें भी याद कर लेना

हर नज़र ख़ामोश है, हर घर से उठता है धुआँ
यह शहर का शहर ही लूटा हुआ लगता है आज

चुप हो के भी तो दो घड़ी बैठो नजर के सामने
रुक-रुककें जब पानी गिरे तब है मजा बरसात का

तुझसे बड़ी भी चीज है कुछ तुझमें जिंदगी
तड़पा किये हैं हम जिसे पाने की चाह में

कारवाँ यों तो हजारों ही जा रहे हर रोज
दूर मंजिल हुई जाती है हर कदम के साथ

कभी तो फिर भी अकेले में मिल ही जाओगे
भले ही आज है मेले में साथ छूट गया

आपका दर न सही, राह का पत्थर ही सही
हमको हर हाल में होना तबाह है कि नहीं!

उनसे परदा है जिन्हें दिल की बात कहनी है,
कुछ हो ऐसा कि ये परदा भी रहे, बात भी हो

हम कहाँ और कहाँ आपसे मिलने का ख़याल!
किसी दुश्मन ने ये बेपर की उड़ायी होगी

निशान आपके-कदमों के मिल न पाते हों
निशान सर की रगड़ से बना रहा हूँ मैं

यह तो आदत है कि जो आह किये जाता हूँ
दर्द होता था जहाँ, अब तो वह दिल ही न रहा

वह नजर थी और जो दिल को उड़ाकर ले गयी
जब फिरी, हम अपनी क़िस्मत के बराबर रह गये

नहीं एक ऐसे तुम्हीं यहाँ, जिसे प्यार मिल न सका कभी
कई लोग पहले भी आये थे, यही चोट खाके चले गये

इस दौर का हर पीनेवाला फिरता है तलाश में प्याले की
एक हम हैं कि प्याला हाथ में ले, खुद को ही पुकारा करते हैं

कुछ भी जाना तो हमने ये जाना, रात है एक ही बस हमारी
जो मिले प्यार के आज साथी, उनसे मिलना दुबारा नहीं है

ये कैसी बस्ती है जिसकी हद में, गये हैं उठ-उठके लोग सारे !
सभीको मिट्टी के ये घरौंदे लुभा रहे थे, पता नहीं था

उम्र की राह जो तै कर आये, आओ उसी से लौट चलें अब
देखो, यहीं तुम हमसे मिले थे, यह है जवानी, यह है लड़कपन

आये तो यहाँ, इतना ही बहुत, आप खुशी से रुखसत हों
इस दिल को तड़पते रहने की आदत है पुरानी क्या कहिये

अंग्रेजी कविताएँ

अनुक्रम

Quadruples (Small poems) /147
O Fast Time ! /149
Fading rose ! /150
The poet's departure /150
Ode to time /151
My muse /152
My critic /152
Discourse With a Spirit /153
The puppet and the string-holder /154
Epilogue /154

Quadruples (Small poems) —

1.

Without any guidance, map or chart
In a vast ocean, I have sailed
Bless me if I win your heart
And pardon me if I have failed

2.

To every wind, butterfly and bird
My fragrance freely I give
I have come to make this world
A better place to live

3.

The seed he sows and tends each hour
Takes his whole life to grow
People praise the beauty of the flower
Who knows the gardener's woe !

4.

A tide comes and swiftly goes
Flash of lightening doesn't stay
Why wail for the evening's fading rose
That fully lived its day !

5.

When roars of partisanship subside
And thirst for poetry grows
I will from these pages arise
As fresh as a morning rose

6.

O my Master, my kind Life-guard !
It's you who guides my faltering steps
Solves my life's all problems hard
And, good or bad, my destiny shapes

7.

How can I repay my Father's regard
Who all my childish wishes fulfilled
Brought me through thousand deaths unharmed
And gave whatever in life I willed

8.

Light is always devoured by darkness
Life by death's unremitting jaws
But poetry's timeless charm never grows less
Ever defying nature's unfailing laws

9.

I have failed in life, I accept
But some one in my ears does say
Why should people from a cuckoo expect
The roaring of a tornado, the drummer's display

10.

Read not my poems through eyes, dear Reader !
Read them through your heart
You will find in them your feeling's mirror
Though lack of poetic art •

O Fast Time !

Where are you going so fast, O Time
With the whole world in your hand ?
Where throwing it away, find new on the way
Each moment equally grand ?

No frolic or fun, who makes you run
Incessantly ? please say
Are you not tired, by him so hired
In doing same work each day ?

Can you unroll, your life's round ball
Tell me your native place.
Both cruel and kind, all knowing and blind
Why keep all masked your face

Will you not free, my rhyme and me
From your invisible chord
Please stop for a while and tell me, O Time !
How can I meet your Lord ? •

Fading rose !

What a waste is life, all tears and strife
The pangs of a broken heart
Love comes and goes as scent of a rose
And the petals fall apart

What love gave once, life robs and runs
The flute falls from my hands
All listeners gone, I roam alone
In distant, desolate lands.

How far and away is the summer's day
When the god of love was young
My time is up, down flows the cup
And the songs lie unsung.

Let life fly back on love's lost track
Make me as I was before
Or teach my heart the juggler's art
That I may grieve no more •

The poet's departure

In heaven or hell, in what forms, where
How fares he, who can say !
His job done here, call fowl or fare
The poet has gone his way

Lost in the great blue void somewhere
Now cares not, what we say
Perhaps he left for heavenly chair
To sing at God's doorway •

Ode to time

I cannot stop you, O fast time !
But mark you this my wishful dream
That I, on your breast, forever shall shine
Like shadow of moon in a flowing stream

How can you efface me when each day
You will hear people sing my lyrics sweet
Although, my clay will mix with clay
My words will echo my each heart-beat

What, if my outward show was poor
I've lived as a prince in poetry's domain
The muses for me, have opened their door
And the gods from heaven their blessings did rain

I have fulfilled mi life's great dream
To create through words, universal bond
Of love and tribute to the power supreme
And lively songs, all hearts respond

My powers have still their earlier glow
Though age will have its share any way
I hope to be ready, when I have to go
With no regrets, at the close of day. •

My muse

How much have I troubled you, O my muse !
Neither to myself nor to you, giving rest
Claiming each time amidst my writings huge
That what I write this time, will be my best
While reading my various works, big or small
Which will last longer, though I can't surmise
Each of them appears to me best of all
As flowers of different, colors, scent and size
Yet, I must produce works of such varied kinds
Amidst taste changing from age to age
That every one, some feelings of his liking, finds
Fulfilling high expectations that my poems raise
Hence, my muse! Be kind and stay with me each time
I get some flash of thought, some idea's urge sublime •

My critic

Some people, sometimes, criticize my poetry
Saying, it smacks too much of sentimental tone
Some don't like poems on love, death and divinity
Say, I am living in times, long by-gone
But are not emotions universal, expressed by me !
Is not love eternal, love-poems in all ages praised
Do not men fear death and seek God's mercy
And do not rhyme and rhythm keep the mind amazed
If feelings of love, death and theology are now outdated
Heart no more the various senses guide
Men don't pray to Him; who this world created
And current whims only, a poem's charms decide
Then let my poetry wait till new beings take birth
Feelings of love death and divinity reappear on the earth •

Discourse With a Spirit

"Is there any life after this life ?
Will I come back in this world ?
Where will I go at the close of my show
In a form unseen, unheard ?

"Will I meet my friends again
And will my memories last ?
Or I will get an entire new set
Quite different from the past ?

"Who's the mathematician, that could
Universe so precisely create
That none from an atom to the stars that roam
From the programming deviate ?

"Why through light and darkness, He wove
A texture of time and space ?
And why at all He produced this ball
From the void of nothingness ?"

Though clues I got to the mysteries above
Contacting a dead man's soul
And doubt not a bit that when I quit
My whole world will not fall

My 'I'ness' I will retain for ever
In shapes, my deeds would earn
My memories will stay in some queer way
And I in the world return.

Yet the spirit could give no hint to me
Who runs this world and why
Itself too evolving, a lost poor thing
Was as ignorant as I •

The puppet and the string-holder

'Please remove the threads that bind my neck
And give my tired limbs rest for a while
Do I not rise again after each break
To dance in the show in your chosen style ?'

'Why give me credit or curse my dance ?
I moved according to the pulls of your chord
Were not my steps good or bad by chance
Or by your favors and frowns, My Lord !'

'Nothing here moves by chance, my son !
I will them, but I am not cruel or kind
They were all, what your dance had won
You have bound yourself, I did not bind'

'You can dance in any way that suits you
But for your failures, don't blame me
Though source, from where all results ensue
I have left you and your movements free' •

Epilogue

No prayers, no pleadings, no wiles prevail
The big and small, the high and low
All sink traceless in time's deep well
Fulfilling their roles in destiny's show

The work that took my whole life-time
I hope the world will soon appreciate
All sensitive hearts will love my rhyme
A place in history, verily I'll get •

रवीन्द्रनाथ : हिन्दी के दर्पण में

(कविगुरु रवीन्द्रनाथ की कतिपय विशिष्ट
बांग्ला कविताओं का हिन्दी काव्यानुवाद)

अनुक्रम

अनुवाद की भूमिका /१५९
रवीन्द्रनाथ और मैं /१६१
जन-गण-मन /१६७
मेरा सोने का बंगाल /१६९
शिवाजी उत्सव /१७३
जब थी रात /१८३
रात और प्रभात /१८५
उर्वशी /१८९
अभिसार /१९५
भैरवी गान /२०१
स्वर्ग से विदा /२०७
दिन का शेष /२१७
आवर्तन /२१९
कर्तव्यग्रहण /२१९
असमाप्त /२२१
भक्तिभाजन /२२१
जाने के दिन /२२३
कुटुंबिता /२२३
शाहजहाँ /२२५
एक दिन तुम प्रिये /२३७
अपना और संसार का /२३७
आत्मा की अमरता /२३९
जन्मदिन /२४१
असंभव- अच्छा /२४१
जीवन-सत्य /२४३
शान्ति पारावार /२४५
अशेष /२४७
मुख की छवि तो देखूँ /२५५

अनूदित कविताओं की संदर्भ तालिका

क्र.	कविता	पुस्तक	पृष्ठ
१.	जनगण-मन	गीतवितान	२४९
२.	आमार सोनार बांग्ला	स्वदेश	२४३
३.	शिवाजी-उत्सव	उत्सर्ग	४८१
४.	अशेष	कल्पना	३२१
५.	भैरवी-गान	मानसी	८९
६.	रात्रे उ प्रभाते	चित्रा	२६७
७.	अभिसार	कथा	३४१
८.	उर्वशी	चित्रा	२५०
९.	केनो यामिनी ना जेते	गीतवितान	३२०
१०.	मुखपाने चेये देखि	गीतवितान	३३३
११.	स्वर्ग सेई विदाय	चित्रा	२५२
१२.	दिनशेषे	चित्रा	२५७
१३.	आवर्तन	उत्सर्ग	४६७
१४.	असमाप्त	गीतांजलि	५१२
१५.	याबार दिन	गीतांजलि	५११
१६.	शाहजहाँ	बलाका	५३९
१७.	असंभव-भालो	कणिका	२९०
१८.	कर्तव्यग्रहण	कणिका	२९०
१९.	भक्तिभाजन	कणिका	२९०
२०.	कुटुंबिता	कणिका	२९०
२१.	निजेर उ साधारणेर	कणिका	२९१
२२.	एकदा तूमि प्रिये	गीतवितान	३८७

२३. आत्मा की अमरता शेषलेखा ९०१
(रवीन्द्र रचनावली, तृतीयखंड, कविता सं. २)
२४. जन्मदिन शेषलेखा ९०७
(रवीन्द्र रचनावली, तृतीयखंड, कविता सं. १०)
२५. जीवनसत्य शेषलेखा ९०७
(रवीन्द्र रचनावली, तृतीयखंड, कविता सं. ११)
२६. शान्तिपारावार शेषलेखा ९०१
(रवीन्द्र रचनावली, तृतीयखंड, कविता सं. १)

अनुवाद की भूमिका

सन् १९४१ में जब मेरी पहली काव्य पुस्तक प्रकाशित हुई थी तो राष्ट्रकवि मैथिलीशरणजी गुप्त ने मुझ से कहा था कि यदि आपको कभी कविता के लिए कोई प्रेरणा न प्रतीत हो और न कोई नया विषय ही सूझे तो किसी बड़ी काव्य-रचना का अनुवाद करने लग जाइयेगा। उनके सदुपदेश पर अमल करने की बारी पहली बार सन् २०१२ में अर्थात् ७१ वर्षों के बाद आयी जब मैंने रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कुछ रचनाओं का हिन्दी में अनुवाद किया। परन्तु यह भावानुवाद है और जगह-जगह पर मैं पथ से बहक भी गया हूँ। कवि अच्छा अनुवादक होता भी नहीं है क्योंकि उसके निजी भावोद्गार पग-पग पर उसे भटका देते हैं। इसलिए मेरे अनुवाद को भावानुवाद ही समझना चाहिए। इसमें जहां-जहां आपको कोई त्रुटि दिखाई दे, समझ लीजियेगा वह मेरे ही कारण है। इस अनुवाद में हिन्दी और बांगला भाषा का अंतर भी स्पष्ट दिखाई देगा। बांगला जहां माधुर्यरस में डूबी नदी की अवरोध-रहित धारा के समान बहती है, वहीं आधुनिक हिन्दी को (जिसे प्रारंभ में खड़ी बोली का नाम दिया गया था) पग-पग पर विभक्तियों की चट्टानों से टकराकर ही आगे बढ़ना पड़ता है।

मेरे अनुवाद कार्य में लगने की भी एक कहानी है। मेरे आदरणीय मित्र श्री जुगल किशोरजी जैथलिया ने रवीन्द्रनाथ और मदनमोहन मालवीयजी की १५०वीं जयन्ती पर राजस्थान परिषद की ओर से स्मारिका निकालने की योजना बनाई तो उसके लिए उन्होंने रवीन्द्रनाथ की कविता 'शिवाजी-महोत्सव' का हिन्दी में अनुवाद करने के लिए मेरे मित्र, रवीन्द्र-गीतों के हिन्दी अनुवादक श्री दाऊलालजी कोठारी को मेरे पास भेजा। पहले तो मैं घबराया क्योंकि मैंने सन् १९८४ में अपनी हिन्दी कविताओं का अंग्रेजी में अनुवाद तो स्वयं किया था परन्तु किसी अन्य कवि की

कविता का अनुवाद करने का यह मेरा पहला ही अवसर होता। 'उमर खय्याम' नामक अपनी कविता भी मैंने अनुवाद के रूप में नहीं, उमर खय्याम के चरित्र-चित्रण के रूप में ही लिखी थी। परन्तु उनके विशेष आग्रह के कारण अंत में मैंने इसे चुनौती के रूप में स्वीकार कर लिया।

यह अनुवाद पूरा करने पर मेरे लिए जैथलियाजी का दूसरा फरमान आया कि मैं भारत के राष्ट्रगीत 'जन-गण-मन' एवं बांग्लादेश के राष्ट्रगीत 'आमार सोनार बांग्ला' का भी हिन्दी में अनुवाद कर दूँ। इसके बाद तो रास्ता खुल गया। अमेरिका आने पर मैंने रवीन्द्रनाथ की कुछ अन्य रचनाओं का भी, जो मुझे प्रिय थीं, अनुवाद कर डाला।

इस सम्बन्ध में एक विशेष बात यह है कि रवीन्द्रनाथ की छन्द-विधा का अनुसरण करते हुए भी हिन्दी की छंद योजना, तुक और अभिव्यक्ति की भिन्नता मुझे पग-पग पर भिन्न मार्ग पर ले जाती रही है क्योंकि मैंने इन कविताओं के अनुवाद में सदा यह ध्यान रखा है कि मेरी रचनायें पढ़ी जाने पर उनमें अनुवाद तो क्या, भावानुवाद होने का भी बोध न हो और वे स्वतन्त्र कविता का पूरा आनन्द दें। पाठक भूल जाय कि वह कोई अनुवाद पढ़ रहा है। इसके लिए मुझे तुक और अभिव्यक्ति ही नहीं, पूरा छन्द विधान भी नया ढूंढना पड़ा है और बीच-बीच में नई उपमायें और उत्प्रेक्षायें भी लानी पड़ी हैं।

मुझे यह सोचकर थोड़ा संतोष भी हो रहा है कि मेरे इस परिश्रम के पुरस्कार के रूप में अब मेरी कविता पर कार्य करने वालों को यह भी जोड़ना पड़ेगा कि मैंने किसी अन्य कवि की कविताओं का अनुवाद भी किया है, और मेरी इस विशेषता पर भी उसी प्रकार खोटा-खरा कुछ लिखना पड़ेगा जिस प्रकार मेरी इधर की लिखी अंग्रेजी की मौलिक कविताओं पर अपना मंतव्य देने को वे विवश हैं।

अंत में मैं यह कहना चाहता हूँ कि प्रस्तुत कृति द्वारा अनुवादक के रूप में मै भी सूरदासजी तथा गोस्वामी तुलसीदासजी से लेकर मैथिलीशरणजी, निरालाजी, महादेवीजी, दिनकरजी और बच्चनजी की महान कवि परम्परा से जुड़ गया हूँ क्योंकि उन सभी ने कवि होते हुए भी कविताओं के अनुवाद का कार्य भी किया है। मैं समझता हूँ इसके लिए यह कृति मुझे विशेष गौरव प्रदान करेगी। ●

रवीन्द्रनाथ और मैं

रवीन्द्रनाथ से हिन्दी के आधुनिक काव्य-साहित्य को बड़ी प्रेरणा मिली है। छायावाद और रहस्यवाद की काव्य-चेतना के मूल में उनका प्रभाव असंदिग्ध है। मैं भी सन् १९४० में ही, जब मेरे कवि-जीवन का प्रारम्भिक काल था, रवीन्द्रनाथ के काव्य से प्रेरणा ग्रहण करता रहा हूँ।

यहाँ मैं अपने काव्य में समय-समय पर रवीन्द्रनाथ के प्रति अभिव्यक्त अपने मनोभावों का विवरण दूँगा। यह केवल मेरा ही नहीं, समस्त हिन्दी जगत का, रवीन्द्रनाथ की १५०वीं जन्मतिथि पर उनके प्रति किया गया स्मृति-अर्चन भी होगा।

रवीन्द्रनाथ के प्रति मेरी पहली कविता है 'माँझी से'। मैंने रवीन्द्रनाथ की रुग्णावस्था में माँझी के रूपक द्वारा उन्हें संबोधित करके यह कविता लिखी थी। उस समय मैं 'काशी हिन्दू विश्वविद्यालय' का इंटर द्वितीय वर्ष का छात्र था। संयोग से निरालाजी उन्हीं दिनों काशी आये थे। मेरी इस कविता को सुनकर वे गंभीर हो गए और बोले, "खड़े हो जाइए"।

जब मैं खड़ा हो गया तो बोले, 'रवीन्द्रनाथ की पुस्तकें एक के ऊपर एक रख दी जायें तो आपके सर के ऊपर से निकल जायेंगी। आपने ऐसा कैसे लिख दिया !' मैं निरुत्तर खड़ा रहा। इसके कुछ क्षणों के बाद निरालाजी मेरी पीठ थपथपाते हुए 'आप' से 'तुम' पर आते हुए बोले, "लेकिन तुम्हारी कविता है बहुत सुन्दर !"

माँझी से

किसे पुकार रहा तू, माँझी ! धूमिल संध्या वेला में
सागर का है तीर, खड़ा हूँ संगीहीन अकेला मैं
डूब चुका रवि अरुण, थकी लहरें, उदास है सांध्य पवन
तारक-मणियों से ज्योतित नीलम-परियों के राजभवन
मधुबन पीछे लहराता है शांत मरुस्थल के उर में
आगे तरल जलधि-प्रांगण रोता विषाद पूरित सुर में

काला महादेश जादू का कहीं बसा होगा उस ओर
बैठा-बैठा जहाँ खींचता है कोई किरणों की डोर

माँझी ! परिचित स्वामी तेरा युग-युग से वह जादूगर
जिसका कठिन नियंत्रण झंझा में समुद्र की लहरों पर
यौवन-मद में चूर मारता एकाकी डाँड़ें भरपूर
कितनी बार गया होगा तू लाखों कोस तीर से दूर !
जहाँ मार्ग के कंकड़-मोती, अलकापुर के पहुँच समीप
देखी होगी नीलम-घाटी, मणि-प्रवाल-रत्नों के द्वीप
वरुण-देश की राजकुमारी तुझ पर मोहित हुई कभी
वे अल्हड़ साहस-गाथाएँ आज स्वप्न की बात सभी
शिथिल बाँह, पग काँप रहे, कंठ-स्वर रुँधने को आया
झुकी कमर, जड़-काष्ठ उँगलियाँ, जीर्ण त्वचा, जर्जर काया

समझा, जीवन की संध्या में आज पुकार रहा किसको
कौन तरुण वह, सौंप चला जाएगा यह नौका जिसको
आ जा, माँझी ! छाया-सा चुपचाप उतर निर्जन तट पर
इन लहरों से मैं खेलूँगा, अब तेरी नौका लेकर

बाद में मैं अपने मित्र राधेश्याम गुप्ता के साथ रवीन्द्रनाथ के दर्शन करने कलकत्ता जानेवाला था परन्तु वह संभव नहीं हो सका। एकाएक रवीन्द्रनाथजी की मृत्यु का समाचार सुनकर मैं व्यथित हो गया। उसी मनःस्थिति में हृदयोद्गार निम्नलिखित कविता में फूट पड़े-

बन्द हो गए द्वार

(रवीन्द्रनाथ के मृत्यु-दिवस की संध्या में लिखित)

भीड़ देवता के अंतिम दर्शन में
भक्त भवन-प्रांगण में क्रंदन करते
मलयानिल रोता फिरता निर्जन में
किस सुषमा के नंदन-वन में
अप्सरियों की छूम-छनन में

आज, महाकवि ! तुम अपनी सोने की वीणा लेकर
हुए उत्तरित क्षण में
हँसती होंगी परियाँ
सुर, गन्धर्व-समाज, समुद किन्नरियाँ
आज इंद्र की भरी राजनगरी में
छुटती होंगी फूलों की फुलझड़ियाँ
आज तुम्हारी मधुमय स्वर-झंकार
स्वयं भारती मंत्र-मुग्ध हो सुनती,
रहीं दिव्वधूगण आरती उतार
सरस्वती के वरद पुत्र तुम
चरण-स्पर्श-सुख-रहित मैं कुसुम,
खड़ा रहा जो, द्विधा-द्वंद्व में, बंद हो गए द्वार

सन् १९८० के आसपास की बात है, मैं रवीन्द्रनाथ की रचना 'गान्धारीर आवेदन' पढ़ते-पढ़ते अत्यंत भावमग्न हो गया। मैंने यह अनुभव किया कि सन् १९४१ में रवीन्द्रनाथ की रुग्णावस्था में उन्हें यह आश्वासन देकर कि मैं आपका स्थान ग्रहण कर लूँगा, मैंने बड़ी भूल की थी। मैं इस योग्य नहीं था। मेरी यही भावना निम्नलिखित पंक्तियों में व्यक्त है -

"हे कविता- रवि !
चाहे जितनी सुन्दर लगती थी तेरी छवि,
प्रभात के धुँधलके में मैं यही सोचता था
'कभी मैं तुझसे भी आगे निकल जाऊँगा !'
किन्तु अपराह्न में
जब मेरा अंग-अंग थककर चूर है,
लगता है,
तू अब भी मुझसे पहले जितनी ही दूर है !"

सन् १९८४-८५ के बाद मैंने सूर, तुलसी और कबीर की परम्परा में हिन्दी में भक्ति के गीत लिखना प्रारंभ किया, जिन्हें सुधी पाठकों से काफी प्रशंसा मिली, फिर भी मेरे हृदय में यह ललक बनी रही कि मैं भी रवीन्द्रनाथ के समान

यदि बंगाल जैसे भावुक प्रदेश में जन्म लेता तो मेरे गीत भी वैसे ही घर-घर में गाये जाते। मेरे इस गीत में वे ही भाव प्रकट हैं -

कवि के मोहक वेश में
जन्म लिया होता यदि मैंने भावुक बंग प्रदेश में
जब मन्दिर में जुड़े भक्तजन झांझ मृदंग बजाते
गा-गाकर निज इष्टदेव के चरित नाचते जाते
जब वे अपनी व्यथा सुनाते रवि ठाकुर के स्वर में
तब मेरे भी स्वर लहराते उनके भावोन्मेष में
कवि के मोहक वेश में
जन्म लिया होता यदि मैंने भावुक बंग प्रदेश में

सन् २००० के नवम्बर तक मुझे अपने गीतों के सृजन से पूरा संतोष हो गया। स्थान-स्थान पर सहृदय समाज में उनका गायन होने लगा और काव्य-मर्मज्ञों ने भी उन्हें गले से लगा लिया। इससे प्रेरित होकर मैंने नवम्बर २००२ ई. में निम्नलिखित गीत लिखा था -

"हे रवीन्द्रनाथ !
मैं भी चल सकूँगा अब तुम्हारे साथ-साथ
तुमने ज्यों गरल-दाह झेला
बदले में सुधा-घट उड़ेला
मैं भी तपता रहा अकेला
लिखते क्षण काँपे नहीं हाथ !
आयेगी मेरी भी बारी
जग को लगेगी कभी प्यारी
काँटों की झेल व्यथा भारी
मैंने जो माला दी गाँथ
गाता प्रेम-भक्ति के स्वरों में
पाऊँगा प्रतिष्ठा अमरों में
गूँजेगी तुम-सी ही घरों में

स्वरधारा यह भी पुण्यपाथ
हे रवीन्द्रनाथ !
मैं भी चल सकूँगा अब तुम्हारे साथ-साथ''

इधर सन् २०१० में पुनः मेरी भावना ने जोर मारा और यद्यपि रवीन्द्रनाथ की महत्ता अस्वीकार करने में मैंने अपनी असमर्थता घोषित की है फिर भी निम्नलिखित गीत में यह अनुरोध गायक-समाज से कर ही दिया है कि वे अब पुराने कवियों के स्थान पर मेरे गीतों को संगीतबद्ध करें और आनन्द उठायें। मेरा यह सबसे नवीनतम गीत जो जून, सन् २०१० में लिखा गया, इसी भाव को अभिव्यक्त करता है-

''नभ पर ऊँचा आसन मेरा
पर कुछ कवियों के तप-सम्मुख झुक जाता इन्द्रासन मेरा
कालिदास की स्मृति धो डालूँ
भक्त बता तुलसी को टालूँ
पर रवींद्र से दृष्टि फिरा लूँ
कैसे यह माने मन मेरा !
पढ़े, सुने, गाये जग इनको
पर कब तक ढोये इस ऋण को !
सुने विविध रूपों में जिनको
नव सुर हैं, नव गायन मेरा
कितनी भी हो अमल धवलता
यदपि काल ग्रसकर ही टलता
पर मुझपर कुछ जोर न चलता
है कवित्व नित-नूतन मेरा
नभ पर ऊँचा आसन मेरा
पर कुछ कवियों के तप-सम्मुख झुक जाता इन्द्रासन मेरा''

उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाएगा कि सन् १९४१ से लेकर अब तक किसी न किसी रूप में रवीन्द्रनाथ मुझपर हावी रहे हैं। •

जन गण मन

जनगणमन-अधिनायक जय हे भारतभाग्यविधाता।
पञ्जाब सिन्धु गुजरात मराठा द्राविड़ उत्कल बङ्ग
विन्ध्य हिमाचल यमुना गङ्गा उच्छल जलधितरंग
तव शुभ नामे जागे, तव शुभ आशिस माँगे,
गाहे तव जयगाथा,
जनगणमङ्गलदायक जय हे भारतभाग्यविधाता।
जय हे ! जय हे !! जय हे !!! जय जय जय, जय हे।।
अहरह तव आह्वान प्रचारित, शुनि तव उदार बाणी
हिन्दु बौद्ध सिख जैन पारसिक मुसलमान खृस्टानी
पूरब पश्चिम आसे तव सिंहासन-पासे,
प्रेमहार हँय गाँथा।
जनगण-ऐक्यविधायक जय हे भारतभाग्यविधाता।
जय हे ! जय हे !! जय हे !!! जय जय जय, जय हे।
पतन-अभ्युदय-बन्धुर पन्था, युग-युग धावित यात्री-
हे चिरसारथि, तव रथचक्रे मुखरित पथ दिनरात्रि।
दारुण विप्लव-माझे, तव शङ्खध्वनि बाजे
संकटदुःखत्राता।
जनगण-पथपरिचायक जय हे भारतभाग्यविधाता।
जय हे ! जय हे !! जय हे !!! जय जय जय, जय हे।।
घोर तिमिरघन निविड़ निशीथे पीड़ित मूर्छित देशे।
जाग्रत छिलो तव अविचल मङ्गल नतनयने अनिमेषे।
दुःस्वप्ने आतङ्के, रक्षा करिले अङ्के,
स्नेहमयी तुमि माता।
जनगणदुःखत्रायक जय हे ! भारतभाग्यविधाता।
जय हे ! जय हे !! जय हे !!! जय जय जय, जय हे।।
रात्रि प्रभातिल उदिल रविच्छवि पूर्व-उदयगिरिभाले,
गाहे विहङ्गम, पुण्य समीरण नवजीवनरस ढाले,
तव करुणारुणरागे, निद्रित भारत जागे,
तव चरणे नत माथा।
जय जय जय हे ! जय राजेश्वर भारतभाग्यविधाता।
जय हे ! जय हे ! जय हे ! जय जय जय, जय हे।। ●

दृष्टव्य : इसके प्रथम चरण को भारत के राष्ट्रगीत का मान मिला

जन-गण-मन

जन-गण-मन- अधिनायक जय हे, भारत भाग्य विधाता,
पंजाब, सिंध, गुजरात, मराठा, द्राविड़, उत्कल, बंग,
विंध्य, हिमाचल, यमुना, गंगा, गर्जित जलधि-तरंग,
नाम सुमरते जागें, तुमसे आशिष मांगें,
गायें नित जयगाथा।

प्रतिदिन सुन आह्वान तुम्हारा, मधुर तुम्हारी वाणी,
हिन्दु, बौद्ध, सिख, जैन, पारसी, मुसलमान, ख्रिस्तानी,
दिशा-दिशा से आकर, रखते सिंहासन पर,
हार प्रेम से गाँथा।

युग-युग धावित हे चिर-सारथि, पतन-अभ्युदय-पथ से,
मुखरित रखते जग अविरत तुम, अंकित कर निज रथ से,
विप्लव देख गरजता, शंख तुम्हारा बजता,
दुख-संकट-भय-त्राता।

घोर तिमिरमय निशि में मूर्च्छित, देश दुखी, अकुलाया,
जाग्रत रहा तुम्हींसे पाकर, सतत स्नेहमय छाया,
मेटे दुखमय सपने, उसे अंक ले अपने,
ज्यों स्नेहाकुल माता।

बीती रात, उदयगिरि पर रवि उगा निशा-तम हरता,
गाते पंछी, मृदुल पवन बह, नवजीवन रस भरता,
पा तुमसे करुणामृत, जगता सोया भारत,
रख चरणों पर माथा।

•

आमार सोनार बांग्ला

आमार सोनार बांग्ला, आमि तोमाय भालोबासि
चिरदिन तोमार आकाश, तोमार वातास, आमार प्राणे बाजाय बाँशि
उ माँ, फागुने तोर आमेर बने घ्राणे पागल करे,
मरि, हाय, हाय रे–
उ माँ अघ्राणे तोर भरा खेते आमि कि देखेछि मधुर हासि।।

की शोभा, की छाया गो, की स्नेह, की माया गो –
की आँचल बिछायेछो बटेर मूले, नदीर कूले कूले।
माँ, तोर मुखेर बाणी आमार काने लागे सुधार मतो,
मरि, हाय, हाय रे –
माँ, तोर बदन खानि मलिन होले, उ माँ आमि नयनजले भासि।।

तोमार एइ खेलाघरे शिशुकाल काटिलो रे,
तोमारि धूलामाटि अंगे माखि धन्य जीवन मानि।
तूइ दिन फुराले संध्याकाले की दीप जालिस घरे
मरि, हाय, हाय रे –
तखन खेलाधूला सकल फेले, उ माँ, तोमार कोले छूटे आसि।।

मेरा सोने का बंगाल

ओ स्वर्णिम बांग्ला माँ ! तुझको करता हूँ मैं प्यार
तेरे गगन, पवन से सुनता वंशी का गुंजार
फागुन में तेरे रसाल-वन,
सौरभ से पागल करते मन
माँ तुझ पर बलि जाऊँ
अनाघ्रात भी खेत धान के हँसते दिखें अपार।

क्या ही शोभामय तरु-छाया,
क्या ही स्नेहमयी है माया !
वट-तरु-तल में, नदी-तटों पर !
बिछा दिया आँचल क्या सुंदर !
माँ तेरे स्वर से कानों में बहे सुधा की धार
माँ ! तुझ पर बलि जाऊँ
नयन सजल हों, मलिन दिखे यदि तेरा मुख सुकुमार।

वह था तेरा ही क्रीडांगन,
जिसमें काटा मैंने बचपन
लिपट धूल-मिट्टी में तेरी,
धन्य हुई, माँ ! काया मेरी
दीप जला, दिन के छिपने पर,
क्या ही दीप्त किया तूने घर !
माँ ! तुझ पर बलि जाऊँ
खेल भुला मैं फिरा गोद में तेरी ही थक, हार।

धेनूचरा तोमार माठे, पारे जाबार खेयाघाटे,
सारा दिन पाखि-डाका छायाय ढाका तोमार पल्लीबाटे,
तोमार धाने-भरा आंगिनाते जीवनेर दिन काटे,
मरि, हाय, हाय रे –
उ माँ, आमार जे भाई तारा सबाई, उ माँ, तोमार राखाल तोमार चासि।।

उ माँ, तोर चरणेते दिलेम एई माथा पेते –
दे गो तोर पायेर धूला, से जे आमार माथार माणिक होबे।
उ माँ, गरीबेर धन जा आछे ताई दिबो चरणतले,
मरि, हाय, हाय रे –
आमि परेर घरे किनबो ना, आर, माँ, तोर भूषन ब'ले गलार फाँसि।।

•

गो-चारण के खेत मनोहर,
पार-हेतु तरनियाँ घाट पर
जिनमें विहग-नाद हो प्रतिपल,
हाट-बाट छायावृत, शीतल
भरा धान से तेरा आँगन,
इन सब में ही कटता जीवन
माँ ! तुझ पर बलि जाऊँ
तेरे कृषक और चरवाहे मेरा कुल परिवार।

मस्तक तेरे चरणों पर नत,
पदरज लूँ सिर पर माणिकवत्
जो भी मुझ गरीब का है धन,
तेरे चरणों में है अर्पण
माँ ! तुझ पर बलि जाऊँ
पर-गृह से क्रय करूँ न अब, गलफाँसी वे गलहार।

•

शिवाजी उत्सव

कोन दूर शताब्देर कोन-एक अख्यात दिवसे
नाहि जानि आजि
माराठेर कोन शैले अरण्येर अन्धकारे ब'से,
हे राजा शिवाजी
तव भाल उद्भासिया ए भाबना तड़ित्प्रभावत्
एसेछिलो नामि—
'एकधर्मराज्यपाशे खण्ड छिन्न विक्षिप्त भारत
बँधे दिब आमि।'

सेदिन ए बङ्गदेश उच्चकित जागे नि स्वपने,
पायनि संबाद—
बाहिरे आसनि छुटे, उठे नाई ताहार प्राङ्गणे
शुभ शङ्खनाद—
शान्तमुखे बिछाइया आपनार कोमलनिर्मल
श्यामल उत्तरीय
तन्द्रातूर सन्ध्याकाले शत पल्लिसन्तानेर दल
छिलो बक्षे करि।।

तार परे एकदिन माराठार प्रान्तर हइते
तव वज्रशिखा
आँकि दिलो दिग्‌दिगन्ते युगान्तर विद्युत्-बह्निते
महामन्त्रलिखा।
मोगल-उष्णीषशीर्ष प्रस्फुरिल प्रलयप्रदोषे
पक्वपत्र यथा—
सेदिन ओ शोने नि बङ्ग माराठार से बज्रनिर्घोषे
की छिलो बारता।।

शिवाजी उत्सव

किन दूर शताब्दियों के पार, एक दिन सहसा
मैं नहीं जानता हूँ आज,
महाराष्ट्र के किस गिरिवन में, मौन भावलीन
बैठे हे शिवाजी महाराज।
आपके आनन को कैसे, तड़ितवत् प्रदीप्त करते
चमक उठा था यह विचार,
'भारत जो खंड-खंड पड़ा, धर्मशासन में
करना है उसे एकाकार।'

उस दिन बंग-देश को, जो नींद से जगा था नहीं
घेरे था जिसे जड़ प्रमाद,
आत्मलीन उसके घोर तिमिर भरे प्रांगण में
गूँजा नहीं वह शंखनाद।
शान्त बंगभूमि अपनी ही भावना में लीन
फैला निज श्यामल उत्तरीय,
ग्रामवासी शत-शत निज पुत्रों सँग थी बिता रही
अपनी सांध्यवेला रमणीय।।

उन्हीं दिनों आया महाराष्ट्र-भू से एक दिवस
क्रान्तिमय प्रदीप का प्रकाश,
जिसने आंक दिया दिग्-दिगंत में संदेश अपना
मुक्ति की बँधाता नई आस।
सन्ध्या के पीत-पत्र सदृश मुगल शासन को
देता चुनौती-सा जयघोष,
सुना नहीं उस दिन बंग-भू ने रह निद्रालीन
निज-पर का नहीं था उसे होश।।

तार परे शून्य हल झंझाक्षुब्ध निविड़ निशीथे
दिल्लिराजशाला–
एके एके कक्षे कक्षे अन्धकारे लागिल मिशिते
दीपालोक माला।
शवलूब्ध गृध्रदेर उर्ध्वस्वर वीभत्स चीत्कारे
मोगलमहिमा
रचिलो श्मशानशय्या–मूष्टिमेय भस्मरेखाकारे
होलो तार सीमा।।

सेदिन ए बङ्ग प्रान्ते पण्यविपणीर एक धारे
नि:शब्दचरण
आनिलो वणिकलक्ष्मी सुरङ्गपथेर अन्धकारे
राजसिंहासन।
बङ्ग तारे आपनार गङ्गोदके अभिषिक्त करि
निलो चुपे चुपे–
वणिकेर मानदण्ड देखा दिलो पोहाले शर्वरी
राजदण्डरूपे।।

सेदिन कोथाय तुमि हे भावुक, हे बीर माराठि,
कोथा तव नाम !
गैरिक पताका तव, कोथाय धूलाय होलो माटि–
तुच्छ परिणाम !
विदेशीर इतिवृत्त दस्यू बोलि करे परिहास
अट्टहास्यरबे–
तव पूण्यचेष्टा जोतो तस्करेर निष्फल प्रयास
एइ जाने सबे।।

अयि इतिवृत्तकथा, क्षान्त करो मूखर भाषण।
उगो मिथ्यामयी,
तोमार लिखन'परे विधातार अव्यर्थ लिखन
होबे आजि जयी।
जाहा मरिबार नहे ताहारे केमोने चापा दिबे
तव व्यङ्गवाणी ?
जे तपस्या सत्य तारे केह बाधा दिबे ना त्रिदिबे
निश्चय से जानि।।

एक-एक करके बुझते दीपकों सी लुप्त हुई
राज-सत्ता दिल्ली की विराट्,
काल के कराल क्रूर करों ने विनष्ट किया
सदियों का जोड़ा ठाठ-बाट।
चीत्कार करते शव-लुब्ध गृद्ध-दल से घिरी
दिल्ली बन गई थी श्मशान,
मुट्ठी भर प्रदेश ही थे उसकी साम्राज्य-सीमा
कंठ पर थे टिके हुए प्राण।।

लायी थी वणिक-लक्ष्मी गुप्त मार्ग से जिस दिन
मातृभूमि का सिंहासन छीन,
अपनी प्रच्छन्न नीतियों की चाल से दिन-दिन
करती हुई उसे शक्तिहीन।
धर दिया वणिक विदेशी-शीश पर जिस दिन
बंग-भू ने राजमुकुट काँप,
करके गंगोदक से अभिषिक्त उसे, स्वामी बना
बन गई सेविका थी आप।।

उस दिन कहाँ थे वीर महाराष्ट्र-अधिपति तुम
कहाँ था तुम्हारा वह सुनाम
गैरिक पताका धूलिसात् थी तुम्हारी उस दिन
शून्य था विजय का परिणाम।
तुम्हें दस्यु नाम दे विदेशियों के इतिहास
करते थे तुम्हारा परिहास,
मिथ्या बता उन्हें दिव्य कर्म जो किये थे तुमने
मानते थे तुम्हें क्रीतदास।।

सोचा था न मिथ्या इतिहास लिख विदेशियों ने
मिथ्या होंगे उनके वे प्रलाप,
उनके लेख से भी बड़ा लेख है विधाता का जो
आँकता है जग के पुण्य-पाप।
छू नहीं सकते कभी मिथ्या आरोप उसे
कितनी भी चलें कुटिल चाल,
सत्य रहता है सदा दीप्त सूर्य के समान
तीनों लोकों में तीनों काल।।

हे राजतपस्वी बीर, तोमार से उदार भावना
विधिर भाण्डारे
सञ्चित हइया गेछे, काल कभू तार एक कणा
पारे हरिबारे ?
तोमार से प्राणोत्सर्ग, स्वदेशलक्ष्मीर पूजाघरे
से सत्यसाधन,
के जानीतो होये गेछे चिर युगयुगान्तर-तरे
भारतेर धन ।।

अख्यात अज्ञात रहि दीर्घकाल, हे राजबैरागी,
गिरिदरितले
वर्षार निर्झर यथा शैल विदारिया उठे जागि
परिपूर्ण बले,
सेइमतो बाहिरेले-विश्वलोक भाविलो विस्मये,
याहार पताका
अम्बर आछन्न करे, एतोकाल एतो क्षुद्र हये
कोथा छिलो ढाका ।।

सेइमतो भावितेछि, आमि कवि ए पूर्व-भारते,
की अपूर्व हेरि,
बङ्गेर अङ्गनद्वारे केमोने ध्वनिलो कोथा होते
तव जयभेरि ।
तिन शत वत्सरेर गाढ़तम तमिस्र विदारि
प्रताप तोमार
ए प्राचीदिगन्ते आजि नवतर की रश्मि प्रसारि
उदिलो आबार ।।

मरे ना, मरे ना कभू सत्य याहा शत शताब्दीर
विस्मृतिर तले-
नाहि मरे उपेक्षाय, अपमाने ना हय अस्थिर,
आघाते ना टले ।
यारे भेबेछिलो सबे कोन काले हयेछे निःशेष
कर्मपरपारे,
एलो सेइ सत्य तव पूजा अतिथिर धरि वेश
भारतेर द्वारे ।।

नष्ट कर सकता नहीं काल यत्न लाख करे
अमर तुम्हारे वे विचार,
संचित है तुम्हारी कीर्ति-कथा लोक-मानस में
कण भी होगा न कभी क्षार।
पालन राष्ट्रधर्म का, तुम्हारा आत्मत्याग, तप
साधना स्वराज्य की कठोर
भूलेगा न विश्व कभी, हे तपस्वी वीर, तुमने
धर्म हित सहे जो कष्ट घोर।।

दीर्घकाल तक गिरि-गुहा-लीन निर्झर ज्यों
सोया हुआ निद्रा में प्रगाढ़,
वर्षा का जल पाकर होता है प्रकट सहसा
अवरोधक शिला का वक्ष फाड़।
वैसे ही विस्मित होकर देखता है जग उसको
जाग रहा सोया था जो देश,
कैसे निज लुप्त हुए गौरव को याद कर वह
नवयुग में करता है प्रवेश।।

उसी प्रकार सोचता मैं, भारत के पूर्व में है
यह अपूर्व दृश्य दिखा आज,
महाराष्ट्र देश से प्रविष्ट हुआ बंग-भू में
तेज वह तुम्हारा महाराज।
तीन-तीन सदियों का गहन अंधकार चीर
बाल रवि-रश्मि-सा प्रचंड,
प्रकट हुआ है वही क्षात्रबल तुम्हारा आज
स्वप्न लिए भारत का अखंड।।

मरता नहीं, मरता नहीं, सत्य रहकर भी छिपा
सदियों की विस्मृति में विलीन,
होता नहीं मलिन उपेक्षा, अपमान से वह
बंधनों से होता नहीं क्षीण।
कल्पना तुम्हारी मान लिया निःशेष हुई
कर्म की नदी को कर पार
सत्य पर तुम्हारा वही, अतिथि का वेश धर
आया फिर भारत के द्वार।।

आजउ तार सेइ मन्त्र सेइ तार उदार नयान
भविष्येर पाने
एकदृष्टे चेये आछे, सेथाय से की दृश्य महान्
हेरिछे के जाने।
अशरीर हे तापस, शुधू तव तपोमूर्ति लये
आसियाछो आज–
तबू तव पूरातन सेइ शक्ति आनियाछो बये,
सेइ तव काज।।

आजि तव नाहि ध्वजा, नाइ सैन्य रण–अश्वदल
अस्त्र खरतर–
आजि आर नाहि बाजे आकाशेरे करिया पागल
'हर हर हर'।
शुधू तव नाम आजि पितृलोक हते एलो नामि,
करिलो आह्वान–
मुहूर्ते हृदयासने तोमारेइ बरिलो, हे स्वामी,
बाङ्गालिर प्राण।।

ए कथा भावे नि केह ए तिन–शताब्द–काल करि–
जाने नि स्वप्ने–
तोमार महत् नाम बङ्ग–माराठारे एक करि
दिबे बिना रणे,
तोमार तपस्यातेज दीर्घकाल करि अन्तर्धान
आजि अकस्मात्
मृत्युहीन वाणी–रूपे, जानि दिबे नूतन परान
नूतन प्रभात।।

माराठार प्रान्त हते एकदिन तुमि, धर्मराज,
डेकेछिले जबे
राजा ब'ले जानि नाइ, मानि नाइ, पाइ नाइ लाज
से भैरव रवे।
तोमार कृपाणदीप्ति एकदिन जबे चमकिलो
बङ्गेर आकाशे
से घोर दुर्योगदिने ना बुझिनु रुद्र सेइ लीला–
लूकानू तरासे।।

आज भी तुम्हारी वही मूर्ति लिये नेत्र दिव्य
भावी में गड़ाये निज दृष्टि,
जाने क्या महान दृश्य देख-देख आँक रही
फिर से विलुप्त निज सृष्टि,
हो भी अशरीरी तुम किन्तु लोकमानस में
अंकित है तुम्हारी वही मूर्ति,
रचे लक्ष्य उन्नत जो, साहस, बल, पौरुष नव
भर दे प्राणों में नयी स्फूर्ति ।।

न तो आज ध्वजा है तुम्हारी, न तो सैन्यबल
न तो हैं वे आज तीक्ष्ण अस्त्र,
गूँजता नहीं है नभमंडल में 'हर-हर' शब्द
लुप्त हो चुके हैं सभी शस्त्र।
आज पितृलोक से तुम्हारा दिव्य नाम फिर भी
जन-जन को करता आह्वान,
करने हृदयासन पर वरण तुम्हें महाराज
आतुर हैं बंग भू के प्राण ।।

सोचा भी नहीं था कभी तीन-तीन सदियों बाद
फिर से बनेगा ऐसा योग,
लड़े बिना मिलेंगे बंगाल, महाराष्ट्र दोनों
साथी मान लेंगे उन्हें लोग।
तपबल तुम्हारा दीर्घकाल से रहा जो लुप्त
रूप धरे फिर से अकस्मात्,
फिर से स्वतन्त्रता का मंत्र देगा भारत को
रजनी से होगा फिर प्रभात ।।

उस दिन जब महाराष्ट्र-गिरि-शिखरों से
तुमने था पुकारा महाराज,
सुनी भी न हाय ! रणभेरी बंग-भू ने उस दिन
अस्वीकृति में आई थी न लाज।
तुम्हारी कृपाण की प्रभा से एक दिन जब
चमक उठा था बंग-प्रान्त,
फिर भी दुर्योगवश नहीं समझ पाया उस दिन
निद्राकुल रहकर सतत भ्रान्त ।।

मृत्युसिंहासने आजि बसियाछो अमर मूरति–
समून्नत भाले
ये राजकिरीटे शोभे लुकाबे ना तार दिव्यज्योति
कभू कोनोकाले।
तोमारे चिनेछि आजि, चिनेछि चिनेछि हे राजन्,
तूमि महाराज।
तब राजकर लये आठ कोटि बङ्गेर नन्दन
दाँड़ाइबे आज।।

सेदिन शुनि नि कथा–आज मोरा तोमार आदेश
शिर पाति लव।
कण्ठे कण्ठे बक्षे बक्षे भारते मिलिबे सर्वदेश
ध्यानमन्त्रे तव।
ध्वजा करि उड़ाइबो वैरागीर उत्तरीय वसन–
दरिद्रेर बल।
'एकधर्मराज्य हबे ए भारते' ए महावचन
करिबो सम्बल।।

माराठिर साथे आजि, हे बाङ्गालि, एक कण्ठे बोलो
'जयतु शिवाजी'।
माराठिर साथे आजि, हे बाङ्गालि, एक सङ्गे चलो
महोत्सवे साजि।
आजि एक सभातले भारतेर पश्चिम–पूरब
दक्षिणे ओ बामे
एकत्रे करुक भोग एकसाथे एकटि गौरब
एक पुण्य नामे।। ●

मृत्यु सिंहासन पर उन्नत किये निज दीप्त भाल
मूर्ति अमर रही जो विराज,
उसके राजमुकुट की ज्योति दिव्य शोभामयी
भुला न सकेगा वह आज।
जान चुका, मान चुका, तुम्हें पहिचान चुका
वह अब हे राजाधिराज,
आश्रय में तुम्हारे राजदंड के ही होंगे खड़े
आठ कोठि बंग-जन आज।।

उस दिन सुना न तुम्हें किन्तु तुम्हारे ही साथ
नवयुग में करेगा अब प्रवेश,
कंठ में, हृदय में महामुक्ति मंत्र दोगे तुम्हीं
एक होगा अब भारत देश।
भगवा जय-ध्वजा ही तुम्हारी फहरेगी आज
देती दुख, दैन्य से विमुक्ति,
'एक धर्मराज होगा भारत भू पर समस्त'
होगी सच तुम्हारी कही उक्ति।।

सुर में सुर मिलाकर मराठों के बंगवासी आज
बोलो शिवाजी की जय-जयकार,
उनके ही पग से पग मिलाकर चलो साथ-साथ
भरते बंग-भू के सभागार।
आज एक साथ जुटें भारत के लोग सभी
पूरब, पश्चिम, दक्षिण और वाम,
एक साथ भोग करें सुख-दुःख का, गौरव से
लेते हुए वही पुण्य नाम।। •

केनो जामिनी

केनो जामिनी ना जेते जागाले ना,
बेला होलो मरी लाजे।
शरमे जड़ित चरणे केमोने
चलिबो पथेरी माझे।।

आलोक परशे मरमे मरिया
हेरो गो शेफालि पड़िछे झरिया
कोनोमते आछे परान धरिया
कामिनी शिथिल साजे।।

निबिया बाँचिलो निशार प्रदीप
उषार बातास लागि,
रजनीर शशी गगनेर कोणे
लूकाय शरण माँगि।
पाखि डाकि बोले, 'गेलो विभावरी',
बधू चले जले लईया गागरि।
आमि ए आकूल कबरी आवरी
केमने जाईबो काजे।। ●

जब थी रात

जब थी रात, नभ में था चाँद भी
जगाया था क्यों नहीं मुझे तभी
कैसे जाऊँ मैं अब ऐसे हाल में !

पसर रही बिंदी, खुली अलकें,
रह-रह झँपती अलस पलकें
नशा-सा है डगमगाती चाल में

जागे लोग रवि के उदय से,
पथ पर चलूँ भी अब कैसे !
मरूँ क्या न लोक-लाज भय से,
मछली-सी फँसी मैं तो जाल में

शेफाली दिन के आलोक से डरी,
छिपा रही मुख लाज से भरी
कामिनी जैसे-तैसे है ठहरी
पत्तों की ओट लिए डाल में

प्रात-पवन-झकोरों से झुककर
दीपशिखा जल रही है भूक्-भुक् कर
भीत शशि पश्चिम दिशा की ओर मुख कर
शरण-हेतु कूद गया ताल में

पक्षी पुकार रहे, "बीती विभावरी"
वधुएँ चलीं घर को जल से भर गगरी
कैसे मैं जाऊँ ! है अनसँवरी कबरी
काजल के दाग लगे गाल में

रात रहते जगाया था क्यों न मुझे
कैसे जाऊँ मैं अब ऐसे हाल में ! •

रात्रे उ प्रभाते

कालि मधूयामिनीते ज्योत्सनानिशीथे कुंज कानने शूखे
फेनिलोच्छल यौवनशूरा धरेछी तोमार मूखे।

तुमि चेये मोर आँखि 'परे
धीरे पात्र लयेछो करे,
हेसे करियाछो पान चुम्बनभरा सरस बिम्बाधरे
कालि मधूयामिनीते ज्योत्सनानिशीथे मधूर आवेशभरे।

तव अवगुंठनखानि
आमि खूले फेलेछिनू टानि,
आमि केड़े रेखेछिनू वक्षे, तोमार कमल कोमल पानि।
भावे निमीलित तव यूगल नयन, मूखे नाहि छिलो बानी।

आमि शिथिल करिया पाश
खूले दियेछिनू केशराश
तव आनमित मूखखानि
शूखे थूयेछिनू बूके आनि-
तुमि सकल सोहाग सयेछिले, सखी, हासि मूकूलितमूखे
कालि मधूयामिनीते ज्योत्सना-निशीथे नवीनमिलनशूखे।।

रात और प्रभात

कल ज्योत्स्ना निशि में मैंने मधु ढाल प्रमत्त करों से
बाहों में भर तुम्हें पात्र था लगा दिया अधरों से

फिरा मदिर दृग-कोर
देखा मेरी ओर
भाँप लिया हो जैसे तुमने मेरे मन का चोर

प्याला ले निज कर में
रिक्त किया पलभर में
मंद-मंद हँस झुका लिया सिर हर्षित प्रेमविभोर

मुक्त हुआ चन्द्रानन
खो लज्जाअवगुंठन
मन का सुख कह गयी तुम्हारी मौन मदभरी चितवन

मैंने कर में ले ली
झुक सुकुमार हथेली
खींच वक्ष में तुम्हें सुगन्धित खोला वेणीबंधन

कल कितनी थी मुदित प्रिये !
तुम मेरे मधुर स्वरों से
कल ज्योत्स्ना निशि में मैंने मधु ढाल प्रमत्त करों से
बाहों में भर तुम्हें पात्र था लगा दिया अधरों से

आजि निर्मलबाय शांत उषाय निर्जन नदीतीरे
स्नानअवसाने शुभ्रवसना चलियाछो धीरे धीरे।

तुमि वाम करे लये साजि
कत तुलिछो पुष्पराजि,
दूरे देवालयतले उषार रागिनी बाँसिते उठिछे बाजि
एई निर्मलबाय शांत उषाय जाह्नवी तीरे आजि।

देवी, तव शिंखिमूले लेखा
नव अरुणसिंदूरेखा
तव वाम बाहु बेड़ी शंखवलय तरून इंदुलेखा
ए कि मंगलमयी मूरति विकाशि प्रभाते दितेछो देखा !

राते प्रेयसीर रूप धरि
तुमि एसेछो प्रानेश्वरी,
प्राते कखन देवीर बेशे
तूमि समूखे उदिले हेसे-
आमि संभ्रमभरे रयेछि दाँड़ाये दूरे अवनत शिरे
आजि निर्मलबाय शांत उषाय निर्जन नदीतीरे।। •

आज प्रभात समय तुम करके स्नान नदी के तट से
चली आ रही हो मंथरगति सज्जित उज्ज्वल पट से

बाएँ कर से थामे
विकच पुष्प डलिया में
सुनती मंदिर की वंशी-ध्वनि गुंजित पूर्व दिशा में

तम में रविकरलेखा
सिर सिंदूरी रेखा
शंखवलय मिस अर्ध चंद्र ज्यों लिपटा वाम भुजा में

रात प्रेयसी बन कर
आयी थी शय्या पर
देवी की-सी दिव्य विभा में आज बनी लोकोत्तर

देख रहा विस्मित बन
मैं यह छविपरिवर्तन
प्रिये ! रूप कैसा अद्भुत यह तुमने आज लिया धर !

दूर-दूर दिखती कितना भी देखूँ आज निकट से
आज प्रभात समय तुम करके स्नान नदी के तट से
चली आ रही हो मंथरगति सज्जित उज्ज्वल पट से •

उर्वशी

नह माता, नह कन्या, नह वधू, सुंदरी रूपसी,
हे नंदनवासिनी उर्वशी !
गोष्ठे जबे संध्या नामे श्रांत देहे स्वर्नांचल टानि
तूमि कोनो गृहप्रान्ते नाही ज्वालो संध्यादीपखानि
द्विधाय जड़ित पदे कंपवक्षे नम्रनेत्रपाते
स्मितहास्ये नाहि चलो सलज्जित वासरशय्याते
स्तब्ध अर्धरात्रे
उषार उदय सम अनवगुन्ठिता
तूमि अकुंठिता

वृन्तहीन पूष्पसम आपनाते आपनि विकशि
कबे तूमि फूटिले उर्वशी
आदिम वसंतप्राते उठेछिले मंथित सागरे
डान हाते सूधापात्र, विषभांड लये वाम करे
तरंगित महासिंधू मंत्रशांत भूजंगेर मतो
पड़ेछिलो पदप्रान्ते उच्छ्वसित फणा लक्ष शत
करि अवनत
कून्दशुभ्र नग्नकान्ति सूरेन्द्रवन्दिता
तूमि अनिंदिता

कोनो काले छिले ना कि मूकूलिका बालिकावयसि,
हे अनंतयौवना उर्वशी
आँधार पाथारतले कार घरे बसिया एकेला
मानिक मूकूता लये करेछिले शैशवेर खेला !
मणिदीपदीप्त कक्षे समूद्रेर कल्लोलसंगीते
अकलंक हास्यमूखे प्रवालपालंके घूमाइते
कार अंकटिते
जखनि जागिले विश्वे यौवनगठिता
पूर्णप्रस्फूटिता

उर्वशी

न तो माता हो, न वधू हो, न कन्या हो तुम हे रूपसी
नंदनवन-वासिनी उर्वशी !
आँगन में झुकती जब संध्या, श्रांत-वदन, मुख पर स्वर्णांचल ताने
दीपक जलाती नहीं कक्ष में किसीके तुम, फैल रहे तम से मुक्ति पाने
द्विधा से जड़ित-पद, कम्पित-वक्ष, लाजभरी पलकों को झुकाकर
जाती नहीं मंथर-गति, मंद मुस्कुराती हुई, किसीकी वासरशय्या पर
स्तब्ध आधी रात में बन-सँवर
उषा के उदय-सी अनवगुंठिता
तुम अकुंठिता

वृन्त-हीन पुष्प के समान कब आप अपने से ही विकसी
तुम अपूर्व सुन्दरी उर्वशी !
आदि वसंतप्रात में थी प्रकट हुई मंथित महासागर के तल से
दायें कर में सुधा-घट ले, बाँयें में घट भरा हलाहल से
क्षुब्ध महासिंधु मंत्र-कीलित भुजंग-तुल्य लक्ष-लक्ष फणों को पसारे
फुँफकारें भुलाकर अपनी शांत हुआ, लोटता था चरणों में तुम्हारे
निकली जब मोहिनी रूप धारे
कुंद-शुभ्र, नग्नकान्ति, सुरेन्द्र-वन्दिता
तुम अनिंदिता

नहीं थी क्या तुम भी कभी मुकुलिका बालिका-वयसी
हे अनंत-यौवना उर्वशी !
गहन अतल के अँधेरे कक्ष में नीरव बालिका-सी बैठकर अकेली
माणिक-मोतियों से खेलती थी किसके घर में तुम बिना किसी संग या सहेली
मणि-दीपित कक्ष में प्रवाल-शय्या पर सुनती गीत सिंधु-ऊर्मियों के गाये
सोती थी भोली मुस्कान लिये रजनी में किसकी गोद में मुँह छिपाए
किसने भेद नृत्य के सिखाये
जगी जब तुम यौवन-मद-गठिता
पूर्णप्रस्फुटिता ?

युग युगांतर होते तूमि शुधू विश्वेर प्रेयसी,
हे अपूर्वशोभना उर्वशी
मूनिगण ध्यान भाँगि देय पदे तपस्यार फल,
तोमारि कटाक्षपाते त्रिभुवनयौवन चंचल,
तोमार मदिर गंध अंधवायू बहे चारि भिते
मधूमत्तभृंगसम मुग्ध कवि फिरे लुब्धचिते
उद्दाम संगीते
नूपूर गुंजरि जाऊ आकूलअंचला
विद्यूतचंचला

सूरसभातले जबे नृत्य करो पूलके उल्लसि,
हे बिलोलहिल्लोल उर्वशी,
छंदे-छंदे नाचि उठे सिंधूमाझे तरंगेर दल,
शस्यशीर्षे सिहरिया काँपि उठे धरार अंचल,
तव स्तनहार होते नभस्थले खसि पड़े तारा,
अकस्मात् पूरूषेर वक्षोमाझे चित्त आत्म्हारा-
नाचे रक्तधारा
दिगंते मेखला नव टूटे आचम्बिते
अयि असम्वृते

स्वर्गेर उदयाचले मूर्तिमती तूमि हे उषसि,
हे भूवनमोहिनी उर्वशी !
जगतेर अश्रुधारे धौत तव तनूर तनिमा,
त्रिलोकेर हृदिरक्त आँका तव चरनशोणिमा,
मुक्तवेणी विवसने विकशित विश्व वासनार
अरविन्दमाझखाने पादपद्म रेखेछे तोमार
अति लघूभार-
अखिल मानसस्वर्गे अनंतरंगिनी
हे स्वप्नसंगिनी

युग-युगान्तर से अखिल विश्व की रही हो तुम्ही प्रेयसी
हे अपूर्व सुन्दरी उर्वशी !
मुनि-गण कर ध्यान भंग, अर्पण कर देते तुम्हे तपस्या के फल को
तुम्हारा कटाक्ष जगाता है यौवन-मद, चंचल कर देता है अचल को
तुम्हारी सुगंध लिये अंध वायु फिरती दिशाओं में गीत गाती
प्रेमभरी ध्वनियों से मधु-लुब्ध भ्रमर-तुल्य कवि को उन्मत्त है बनाती
चलती तुम छवि से मदमाती
नूपुर-शिंजित-चरण, आकुल-अंचला
विद्युत-चंचला

सुर-सभा-तल में जब नृत्य करती पुलकभरी, हुलसी
हे कल्लोल-हिल्लोलित उर्वशी
छंदों पर तुम्हारे नाच उठता सिंधु-तरंगों का दल है
शत-शत शस्य-शीश डुला नाचता धरा का अंचल है
छूते स्तन-हार को तुम्हारे तारे टूट-टूट गिरते हैं गगन से
नाचती पुरुष-धमनियों में रक्तधारा तीव्र उठती झंकार जब चरण से
दिशाओं में उन्मद नर्तन से
मेखला के मोती हैं बिखरते
अयि असम्वृते !

उदयाचल पर स्वर्ग के तुम मूर्तिमयी उषा बन हँसी
हे भुवन-मोहिनी उर्वशी !
जग के आँसुओं से धुली अंगों की तुम्हारे है मधुरिमा
तीनों लोकों ने रक्त से अपने रँगी है तुम्हारी पद-अरुणिमा
मुक्तवेणी विवसना तुम विश्व-वासना के कमल-दल पर
रखती हो कोमल पद अपने अति लघु-भार, स्निग्ध, सुन्दर
जग को निज रूप से विसुध कर
मानस-स्वर्ग की अंतर-रंगिनी
हे स्वप्न-संगिनी !

उई शुनो दिशे दिशे तोमा लागि काँदिछे क्रंदसी,
हे निष्ठुरा बधिरा उर्वशी !
आदियुग पूरातन ए जगते फिरिबे कि आर-
अतल अकूल होते सिक्तकेशे उठिबे आबार ?
प्रथम से तनूखानी देखा दिबे प्रथम प्रभाते
सर्वांग काँदिबे तव निखिलेर नयनआघाते
वारिबिंदूपाते !
अकस्मात् महाम्बूधि अपूर्व संगीते
रबे तरंगिते

फिरिबे ना, फिरिबे ना- अस्त गेछे से गौरवशशि
अस्ताचलवासिनी उर्वशी !
ताई आजि धरातले वसंतेर आनंदउच्छवासे
कार चिरविरहेर दीर्घश्वास मिशे बहे आसे
पूर्णिमानिशीथे जबे दश दिके परिपूर्ण हासि
दूरस्मृति कोथा होते बाजाय व्याकुल करा बाँशि
झरे अश्रुराशि
तबू आशा जेगे थाके प्राणेर क्रन्दने
अयि अबन्धने ! ●

सुनो, रो रहा है जग तुम्हारे लिए, ओ अमरपुरी में बसी
निष्ठुर, वधिर, उर्वशी
फिरेगा वह आदियुग क्या फिर इस भूतल पर, जब मणिरत्नों से सँवारी
अतल अकूल में से उठती हुई सिक्तकेशी प्रतिमा दिखेगी फिर तुम्हारी
पहले जैसी ही फिर दिखोगी क्या जग को तुम सद्यःस्नात आती सिंधुतट से
जग की लुब्ध दृष्टि से विकल छिपाती हुई अपने अंगों को आर्द्र पट से
झाड़ वारि-बिंदु खुली लट से
अकस्मात् सागर की ध्वनि से अनुषंगिता,
होती तरंगिता

फिरेगा नहीं, फिरेगा नहीं, अस्त हो चुका है वह गौरव-शशि
अस्ताचल-वासिनी उर्वशी
इसीलिए तो आज भूतल पर गुंजित वसंत के भी आनंद-उल्लास में
जाने कैसी विरहव्यथा है छिपी करुणा की कसक भरी है साँस-साँस में
पूर्णिमा निशीथ में भी प्रेमियों की जोड़ी जब मद-मत्त प्रेम-गीत गाती है
जाने किसकी स्मृतियाँ लिये दूरागत बाँसुरी की तान मन उन्मन बनाती है
आँसुओं की झड़ी लग जाती है
फिर भी आशा है, फिरोगी दुख हरने,
अयि अबन्धने ! ●

अभिसार

संन्यासी उपगुप्त
मथूरा पूरीर प्राचिरेर तले एकदा छिलेन सुप्त।
नगरीर दीप निवेछे पवने,
दूयार रुद्ध पौर भवने,
निशिथेर तारा श्रावनगगने घनमेघे अवलुप्त।।

काहार नूपूर शिंजित पद सहसा बाजिलो बक्षे।
संन्यासीबर चमकि जागिलो,
स्वप्नजड़िमा पलके भाँगिलो,
रूढ़ दीपेर आलोक लागिलो क्षमासुन्दर चक्षे।।

नगरीर नटी चले अभिसारे यौवनमदे मत्ता।
अंगे आँचल सुनील बरन,
रूनूझूनू रवे बाजे आभरण,
संन्यासी गाये पड़िते चरन थमिलो बासवदत्ता।।

प्रदीप धरिया हेरिलो ताहार नवीन गौरव कान्ति
सौम्य सहास तरून बयान,
करूणाकिरणे विकच नयान,
शुभ्र ललाटे इंदुसमान भातिछे स्निग्ध शान्ति।।

कहिलो रमनी ललितकंठे, नयने जड़ित लज्जा,
"क्षमा करो मोरे, कूमार किशोर,
दया करो यदि गृहे चलो मोर
ए धरणीतल कठिन कठोर, ए नहे तोमार शय्या।"

अभिसार

संन्यासी उपगुप्त
एक बार प्राचीर निकट मथुरा के रहे सुसुप्त
दीप बुझे खा झंझा झोंके
बन्द हुए थे पट भवनों के
पावस निशि थी, तारे भी थे मेघों में अवलुप्त

सहसा आहट सुनी किसी नूपुरशिंजित पगतल की
चौंक, चकित जागा संन्यासी
टूटी नींद, देव-प्रतिमा-सी
दीपक-द्युति में एक गौर छवि शांत दृगों में झलकी

लौट रही थी नगरवधू मधुउत्सव से मदमत्ता
नीलाम्बरसज्जित कोमल तन
रुनझुन बजते थे आभूषण
संन्यासी पर पग लगते ही ठहरी वासवदत्ता

रख प्रदीप, देखी रमणी ने सन्मुख मोहक कान्ति
यौवनदीप्त गौर स्मित आनन
करुणा-स्नेह भरे युग लोचन
शुभ्र भाल पर इंदु-विभा-सी स्निग्ध तपोज्ज्वल शान्ति

बोली तरुणी लाजभरी, सकुचाई स्नेहप्रणत हो
"क्षमा करो यदि, हे तापसवर !
चलो कृपा करके मेरे घर
शोभा देता नहीं शयन भू का यह कोमल तन को"

संन्यासी कहे करूणवचने, "अयि लावण्यपुंजे!
एखनो आमार समय होये नी,
यथाये चलेछो जाओ तुमि धनी
समय ये दिन आसिबे आपनी याइबो तोमार कुंजे।।"

सहसा झंझा तड़ित शिखाय मेलिलो बिपुल आश्य।
रमनी काँपिया उठिलो तरासे,
प्रलयशंख बाजिलो बाताशे,
आकाशे बज्र घोर परिहासे हासिलो अट्टहास्य।।

बर्ष तखनो होए नाइ शेष, ऐसेछे चैत्र संध्या।
बातास होएछे उतला आकुल,
पथ तरुशाखे धरेछे मूकूल,
राजार कानने फुटेछे बकूल, पारूल, रजनीगंधा।।

अति दूर होते आसिछे पवने बाँशिर मदिर मंद्र।
जनहीन पुरी, पुरबासी सबे
गेछे मधुबने फूल-उत्सवे,
शून्य नगरी निरखि नीरवे हासिछे पूर्णचंद्र।।

निर्जन पथे ज्योत्सनाआलोते संन्यासी एका यात्री।
माथार उपरे तरुवीथिकार
कोकिल कूहरि उठे बारबार,
एतदिन परे ऐसेछे कि तार आजि अभिसार-रात्रि ?

नगर छाड़ाये गेले दंडी बाहिर प्राचीर-प्रान्ते।
दाँड़ालेन आसि परिखार पारे
आम्रवनेर छायार आँधारे
के उई रमनी पड़े एक धारे ताहार चरनोपांते ?

संन्यासी ने कहा, "आज तो मैं यह कष्ट न दूँगा
अभी न समय हुआ है मेरा
अभी तुम्हें जग ने है घेरा
जिस दिन होगा समय, देवि ! मैं आकर स्वयं मिलूँगा"

सहसा झंझानिल ने आकर कर का दीप बुझाया
भय छाया रमणी के मन में
वज्र-घोष-सा हुआ गगन में
अट्टहास कर नभ ने मानो निज परिहास जताया

नहीं वर्ष भी शेष हुआ था, चैत्र-पूर्णिमा आयी
गदराया तरुओं का यौवन
मंद पवन, फूले वन-उपवन
प्रात खिले पाटल, निशि में रजनीगंधा मुस्काई

आती थी सुदूर मधुवन से वंशी की ध्वनि मादक
छोड़ पुरी, पुरवासी सारे
थे मधु-उत्सव-हेतु सिधारे
एकाकी पूनो-शशि था सूनी नगरी का रक्षक

निर्जन रजनी में संन्यासी था चल रहा अकेला
तम-पथ पर रुक-रुककर रह-रह
जाने किसे ढूँढता था वह
क्या इतने दिन पर आयी थी उसकी परिणय-वेला !

लाँघ पूरी, प्राचीर, गया वह दंडी पुर के बाहर
रुग्ण-गात तरु तले जहाँ पर
पड़ी एक नारी थी निःस्वर
ठहर गया वह लगते ही उसका लघु स्पर्श चरण पर

निदारूण रोगे मारी गूटिकाय भरे गेछे तार अंग।
रोगमसि-ढाला कालि तनू तार
लये प्रजागने पूर परिखार
बाहिर फेलेछे करि परिहार विषाक्त तार संग।।

संन्यासी बसि आड़स्त शिर तुलि निलो निज अंके।
ढाली दिलो जल शुष्क अधरे,
मन्त्र पड़िया दिलो शिरपरे''
ढाली दिलो देह आपनार करे शीत चंदनपंके।।

झरीछे मूकूल, कूजिछे कोकिल, यामिनी जोछनामत्ता।
''के एसेछो तुमि उगो दयामय''
शुधाईलो नारी, संन्यासी कय
''आजि रजनीते होयेछे समय, आसेछि बासवदत्ता।'' •

स्याह हुई उस नारी के तन पर उभरे थे दाने
जान उसे चेचक से पीड़ित
स्पर्श विषाक्त समझकर जनहित
पुर के बाहर उसे किया था शंकित राजसभा ने

संन्यासी ने बैठ, अंक में रोग-तप्त सिर रखकर
दिया ढाल मुख में शीतल जल
परस भाल पर दिया सुकोमल
चंदनलेप किया निज कर से उस दुखिया के तन पर

फूल झड़ रहे थे, गाती थी कोयल मधु-रस-मत्ता
"कौन दयामय हो तुम," सुनकर
बोला संन्यासी कोमल-स्वर
"हुआ मिलन का समय आज, मैं आया वासवदत्ता।" •

भैरवीगान

उगो, के तूमि बोसिया उदास मुरति बिषाद शांत शोभाते!
उई भैरवी आर गायो नाको एई प्रभाते
मोर गृहछाड़ा एई पथिक परान तरुन हृदय लोभाते।।

उई मन उदासीन उई आशाहीन उई भाषाहीन काकली
देय व्याकुल परशे सकल जीवन बिकली।
देय चरने बाँधिया प्रेमबाहू घेरा अश्रुकोमल शिकलि।
हाय मिछे मने होय जिवनेर ब्रत, मिछे मने होय सकलई।।

यारे फेलिया एसेछि, मने करि, तारे फिरे देखे आसि शेषबार।
उई काँदिछे से जेनो एलाये आकुल केशभार।
यारा गृहछाए बशी सजल नयन मूख मने पड़े से सबार।।

एयि संकटमय कर्मजीवन मने होय मरू साहारा,
दूरे मायामय पूरे दितेछे दैत्य पाहारा।
तबे फिरे जाउया भालो ताहादेर पाशे पथ चेये आछे याहारा।।

सेई छायाते बसिया सारा दिनमान, तरुमर्मर पवने,
सेई मूकूल आकूल बकूल कूंजभवने,
सेई कूहूकूहरित बिरहरोदन थेके थेके पशे श्रवने।।

सेई चिरकलतान उदार गंगा बहिछे आँधारे आलोके,
सेई तीरे चिरदिन खेलिछे बालिका-बालके।
धीरे मारा देह जेनो मूँदिया आशिछे स्वप्नपाखिर पालके।।

भैरवीगान

तू कौन, प्रात की करुण विदा की वेला में
कर मुख उदास, भैरवी लगी सन्मुख गाने
मेरे गृहत्यागी मन को सुर ये बेध रहे
ढीले होते जाते संकल्पों के ताने

यह भाषाहीन निराशामय स्वरलहरी सुन
मुझको अपनी साधनादिशा मिथ्या लगती
कस अश्रुअर्गला मेरे गतिमय पाँवों में
यह चेतनता को मोहक रंगों से रँगती

जो मुक्तकुंतला, बेसुध भू पर सिसक रही
मैं घर में जिसे बिलखता छोड़ चला आया
जी करता है अब उड़कर उसके पास पहुँच
मैं गले लगा लूँ फिर वह शीर्ण, मलिन काया

जलहीन मीन-सी मेरी प्रिया विकल होगी
कैसे काटेगी अब वह एकाकी जीवन
वह कक्ष जहाँ वीणाध्वनि गूँजा करती थी
मैं सुनता हूँ अब उससे आता हुआ रुदन

यह किस छलनामय मरुप्रदेश में आया मैं
लगता ज्यों कोई दैत्य यहाँ है पहरे पर
क्या पा लूँगा इस कठिन कर्मपथ पर चलकर !
क्यों छोड़ा मैंने अपना शांतिप्रेममय घर !

वह घर मेरा था कितना, आह ! सुखद जिसमें
पत्नी के थे मृदु वचन ताप मन का हरते
मैं चिंता-मुक्त जहाँ दिन काटा करता था
अब पीड़ा होती है जिसकी स्मृति भी करते

हाय, अतृप्त यत महत् वासना गोपनमर्मदाहिनी,
एई आपनामाझारे शुष्क जीवन वाहिनी।
उई भैरवी दिया गाँथिया-गाँथिया रचिबो निराशा काहिनी।।

सदा करुन कंठे काँदिया गाहिबे, "होलो ना, किछूई होबे ना।
एई मायामय भवे चिरदिन किछू रबे ना
के जीवनेर जत गुरुभार व्रत धूलि होते तूलि लबे ना।।

यदि काज नीते होय कत काज आछे, एका कि पारिबो करिते !
काँदे शिशिर-बिंदु जगतेर तृषा हरिते !
केनो अकूल सागरे जीवन सोंपिबो एकेला जीर्ण तरीते।।

शेष देखिबो पड़िलो सुखयौवन फूलेर मतन खसिया
हाय वसंतवायु मिछे चले गेलो श्वसिया,
सेई जेखाने जगत् छीलो एक काले सेईखाने आछे बसिया।।

'शुधू आमार जीवन मरिलो झरिया चिर जीवनेर तियासे।
एई दग्ध हृदय एतो दिन आछे की आशे !
सेई डागर नयन, सरस अधर गेलो चलि कोथा दिया से !'

उगो, थामो, यारे तूमि बिदाय दियेछो तारे आर फिरे चेयो ना।
उई अश्रुसजल भैरवी आर गेयो ना
आजि प्रथम प्रभाते चलिबार पथ नयनवाष्पे छेयो ना।।

उई कुहक रागिनी एखोनि केनो गो पथिकेर प्रान बिबशे
पथे एखोनो उठिबे प्रखर तपन दिवसे
पथे राक्षसी सेई तिमिर रजनी ना जानि कोथाय निबसे

शिशु जहाँ खेलते आँगन में थी चहल-पहल
मित्रों का जमघट, होता हास्य-विनोद जहाँ
वे राग-रंग, वे प्रेम और ममता के स्वर
पाऊँगा अब मैं वह सुख, वह उल्लास कहाँ !

जीवन में हैं अतृप्त वासनाएँ कितनी !
जो स्वप्न अधूरे, क्या पूरे कर पाऊँगा !
अब उन्हें बाँधकर सुर में इसी भैरवी के
लौटूँगा मैं, अब और न आगे जाऊँगा

मुझ-से कितने ही लोग गए श्रम कर-कर के
कुछ हुआ न अब तक और न कुछ भी होना है
जग में कुछ कर दिखलाने की यह आकांक्षा
चींटी के मस्तक पर हिमगिरि को ढोना है

हैं कार्य अमित क्या कर लूँगा मैं एकाकी !
मैं तुहिन-बिंदु, कैसे जगतृषा मिटाऊँगा !
निज जीवन के वासंती दिवस गँवाकर भी
इस जग को वैसे का वैसा ही पाऊँगा

जगतृषातृप्ति-हित क्यों दूँ खपा स्वयं को मैं !
वह बुझी कभी, लोगों ने कितना यत्न किया !
वे सजल नयन, वे सरस अधर हैं बुला रहे
जाऊँगा मैं तो जहाँ बसी है प्राण-प्रिया

पर, हाय ! करूँ क्या ! इधर भैरवी खींच रही
हैं उधर कठिन संकल्प लिए जो सेवा के
मैं कितना भी रोऊँ, मन कितना भी तड़पे
अब लौट न पाऊँगा पर इस पथ पर आके

अब लाख लुभाएँ स्वर ये मुझे भैरवी के
पथ कितना भी दुर्गम हो अंत न ज्ञात मुझे
पर मन को दृढ़ कर चलते ही जाना होगा
ले घेर भले ही आगे काली रात मुझे

थामो, शुधू एकबार डाकि नाम तार नवीन जीवन भरिया,
जाबो यार बल पेये संसारपथ तरिया
यत मानवेर गुरु महत् जनेर चरन-चिह्न धरिया।।

याऊ ताहादेर काछे धरे यारा आछे पाषाने परान बाँधिया,
गाउ तादेर जीवने तादेर वेदने काँदिया।
तारा पड़े भूमितले, भासे आँखिजले निज साधे बाद साधिया।।

हाय, उठिते चाहिछे परान, तबूउ पारे ना ताहारा उठिते।
तारा पारे ना ललित लतार बाँधन टूटिते
तारा पथ जानियाछे, दिवानिशि तबू पथ-पाशे रहे लूटिते।।

तारा अलस बेदन करिबे यापन अलस रागिनी गाहिया,
रबे दूर आलो-पाने आबिष्टप्राने चाहिया।
उई मधूर रोदने भेसे जाबे तारा दिवस रजनी बाहिया।।

सेई आपनार गाने आपनि गलिया आपनारे तारा भूलाबे,
स्नेहे आपनार देहे सकरुण कर बूलाबे।
शूखे कोमल शयने राखिया जीवन घूमेर दोलाय दूलाबे।।

उगो, एर चेये भालो प्रखर दहन, निठूर आघात चरने।
जाबो आजीवन काल पाषाणकठिन सरने।
यदि मृत्युर माझे निये जाय पथ शूख आछे सेई मरने।। •

हो चुका विदा जिनसे न उन्हें अब याद करूँ
यह अश्रु-सिक्त भैरवी और मत गावो तुम
जो मेरी बिछुड़ी प्रिया सिसकती है घर में
हे गायक ! अब उसकी मत याद दिलावो तुम

अब बंद करो गायन मैं उनकी स्मृति कर लूँ
जिन गुरुजन से पाया यह नव जीवन का वर
कर्त्तव्य-मार्ग यह कितना भी हो कष्टभरा
मैं मुड़ न सकूँगा चल उनके पदचिह्नों पर

कितना है दुख, संताप-विकल यह जग सारा
मैं अब इसकी सेवा में दिवस बिताऊँगा
निज जीवन के सुख-भोगों की बलि दे कर ही
कुछ तो इसकी पीड़ा को कम कर जाऊँगा।

दुःख भोग रहे जो अपने घर की सीमा में
संघर्ष सदा अपने मन से ही करते हैं
पाती न टूट पाँवों में लिपटी पुष्प लता
है साध किन्तु साधना सिद्धि से डरते हैं

सम्मुख पथ का आलोक चमकता है फिर भी
फूलों की शैय्या छूट न जिनसे पाती है
दे तर्क विविध संतुष्ट स्वयं को कर लेते
दुख जाते भूल, नींद जब सुख की आती है

उनके सुख दुख का साथी बनकर, मैं उनको
मंगलमय जीवन का शुभ मार्ग दिखाऊँगा
हो यह सेवाव्रत कठिन, न छोड़ूँगा इसको
इस पथ पर मरने में भी सुख ही पाऊँगा •

स्वर्ग सेई विदाय

म्लान होए एलो कंठे मंदारमालिका –
हे महेंद्र, निर्वापित ज्योतिर्मय टिका
मलिन ललाटे, पुरातन बल होलो क्षीण
आजि मोर स्वर्ग होते विदायेर दिन

हे देव,
हे देविगण !
वर्ष लक्ष शत
यापन करेछी हर्षे देवतार मतो
देवलोके, आजि शेष विच्छेदेर क्षणे
लेश मात्र अश्रुरेखा स्वर्गेर नयने
देखे जाबो एही आशा छिलो, शोकहीन
हृदिहीन, सूख स्वर्गभूमि, उदासीन
चेये आछे, लक्ष लक्ष वर्ष तार
चक्षेर पलक नहे; अश्वत्थ शाखार
प्रांत होते खसि गेले जीर्णतम पाता
यत टूकू बाजे तार, तत टूकू व्यथा
स्वर्गे नाही लागे, जबे मोरा शतशत
गृहच्यूते, हृतज्योति नक्षतेर मतो
मूहूर्ते खसिया पड़ि देवलोक होते
धरित्रीर अंतहीन जन्ममृत्युलोके
से वेदना बाजितो यद्यपि, विरहेर
छायारेखा दितो देखा, तबे स्वर्गेर
चिरज्योति म्लान होते मर्त्येर मतन
कोमल शिशिरवाष्पे; नंदनकानन
मर्मरिया उठितो निश्वसिया; मंदाकिनी

स्वर्ग से विदा

मंद हुई कंठ की मंदारकुसुममाला है
पुँछ गया टीका भाल पर का ज्योतिवाला है
पुण्यबल है क्षीण, और रुकना कठिन है
मित्रो, आज मेरा स्वर्ग से विदा का दिन है

भोग करते स्वर्ग के सुख, मैंने एक लाख वर्ष
रहकर देव तुल्य ही बिताये हैं यहाँ सहर्ष
आशा थी कि मेरे स्वर्ग से विदा के क्षण में
देखूँगा मैं अश्रु देवताओं के नयन में

किन्तु देखता हूँ आत्मलीन वे हृदयहीन
देख रहे ऐसे मुझे देखा हो जैसे कभी न
पीड़ा बिछुड़ने की मेरे सालती उन्हें नहीं
अपने सुख विनोद में लगे थे जहाँ, हैं वहीं

पलकें भी न उनके, दिख ही जाता अश्रु आँख का
मोह यदि होता साथ बीते वर्ष लाख का
जीर्णतम पीपल का पत्र भी झड़े कहीं
दुख होता जितना उसे, उतना भी दुख नहीं
देवों के हृदय में है, उनकी मंडली से छूट
भू पर जा रहा हूँ जब मैं तारे-सा गगन से टूट

मुझ से बिछुड़ने का दुख जो देवों को भी होता आज
मानवों-सा साश्रुदृग विदाई देता सुरसमाज
नंदनकानन भरता उसाँस शोकमय सुर में
मंदाकिनी बहती ले व्यथा की तान नूपुर में

कूले-कूले गेये जेतो करूण काहिनी
कलकंठे; संध्या आसि दिवाअवसाने
निर्जन प्रांतरपारे दिगंतेर पाने
चले जेतो उदासिनी; निस्तब्ध निशीथ
झिल्लीमन्त्रे शुनाइतो वैराग्यसंगीत

नक्षत्रसभाय माझे माझे सूरपूरे
नृत्यपरा मेनकार कनकनूपूरे
तालभंग होतो,
हेलि उर्वशीर स्तने
स्वर्नवीना थेके थेके येनो अन्यमने
अकस्मात झंकारितो कठिन पीड़ने
निदारुण करूण मूर्छना, दितो देखा
देवतार अश्रुहीन चोखे जलरेखा
निष्कारणे,
पतिपाशे बसि एकासने
सहसा चाहितो शची इंद्रेर नयने
येन खुँजि पिपासार वारि, धरा होते
माझे माझे उच्छसि आसितो वायू स्त्रोते
धरणीर सूदीर्घ निश्वास-खसि झरि
पड़ितो नंदनवने कूसूममंजरी
थाको स्वर्ग हास्यमूख;
करो सूधापान
देवगण,
स्वर्ग तोमादेरई शूखस्थान-
मोरा परवासी, मर्तभूमि स्वर्ग नहे,
से ये मातृभूमि- ताई तार चक्षे बहे
अश्रुजल धारा, यदि दू दिनेर परे
केह तारे छेड़े जाय दू दंडेर तरे,

संध्या उदासी से भरी होते ही दिवस का अंत
चली जाती म्लानमुखी शोकमय बना दिगंत
रजनी छिपा लेती अश्रु तारों की सभा के बीच
झिल्ली के स्वरों से देती वन को आँसुओं से सींच

पलकों से सुरेन्द्र के भी आज मुझे जाते देख
गाल पर ढुलक पड़ती मोती की-सी बूँद एक,
इन्द्रसभा बीच जहाँ होता सदा रासरंग
सहसा नृत्यलीन मेनका का होता तालभंग,
मदमत्त उर्वशी गले से लगी वीणा पर
गाती प्रेमगीत जब सुरों में मधुर तानें भर
एकाएक आती उनसे व्यथा भरी ऐसी धुन
फूट ही पड़तीं मन की दबी सिसकियाँ करुण
बैठी पतिपार्श्व में शची भी उठा मुख सहास
ढूँढ़ती जब स्वामी के नयन में मृदु मिलन की प्यास
मुख पर उसके भी, विदा लेता जब मैं माथा टेक
सहसा दिखाई देती वेदना की रेखा एक
आती बीच-बीच में जो भू की साँस दुखभरी
छूकर उसे नंदन की झड़ती कुसुममंजरी
हे देवो! सँभालो अपना स्वर्गलोक तुम महान
हास्यमुख रहकर यहाँ सुख से करो सुधापान
मैं तो परदेसी हूँ, कभी यह न देश मेरा है,
कुछ काल को ही यहाँ बस हुआ बसेरा है

मर्त्यभूमि ही तो मेरी मातृभूमि प्यारी है
मुझसे दो दिनों का भी वियोग जिसे भारी है
आँसुओं की लगे झड़ी, पल में हृदय हो अधीर
विकल उसे कर दे जब मेरे बिछुड़ने की पीर

यत क्षुद्र, यत क्षीण, यत अभाजन,
सबारे कोमल वक्षे बाँधीबारे चाय-
धूलिमाखा तनूस्पर्शे हृदय जूड़ाय
जननीर, स्वर्गे तव बहूक अमृत
मर्ते थाक् शूखेदुःखे अनंत मिश्रित
प्रेमधारा- अश्रुजले चिरश्याम करि
भूतलेर स्वर्गखंडगुलि

हे अप्सरि !
तोमार नयनज्योति प्रेमवेदनाय
कभू ना होइक म्लान-लईनू विदाय
तुमि कारे करो ना प्रार्थना; कारो तरे
नाहि शोक, धरातले दीनतम घरे
यदि जन्मे प्रेयसी आमार, नदीतीरे
कोनो एक ग्रामप्रान्ते प्रच्छन्न कुटीरे
अश्वत्थ छायाय, से बालिका बक्षे तार
राखिबे संचय करि सूधार भाण्डार
आमार लागिया सयतने, शिशुकाले
नदीकूले शिवमूर्ति गढ़िया सकाले
आमारे माँगिया लबे वर, संध्या होले
ज्वलंत प्रदीपखानि भासाइया जले
शंकित कम्पित वक्षे चाही एकमना
करिबे से आपनार सौभाग्यगणना

क्षुद्र हो कि क्षीण हो, कुपात्र या कुवेश हो
पापी तापी सभी का शरणस्थल वही देश हो
धूल झाड़ तन की, गोद में ले, स्नेहअंचल तान
जननी वह पालती सभी को पुत्र के समान
स्वर्ग में अमृत हो, मृत्यु हो न सतत त्रासिनी
मृत्युलोक में है प्रेमगंगा शोकनाशिनी
सुखदुख में डूबते की बाँह लेती थाम जो
संवेदनजल से भू को रखती स्वर्गधाम जो

हे अप्सरि ! तुम्हारा मुख क्यों व्यथा से विवर्ण हो
तुमको क्या ! जो छूटे एक प्रेमी, दूसरा करो
तुम्हें क्या पता कि कैसी होती विरहवेदना
प्रेमी से बिछुड़ने की ! करती तुम न प्रार्थना
किसी के कुशल की कभी, आज ही फिर क्यों हो दुख
मेरे बिछुड़ने का तुम्हें ! तुम तो चिरप्रसन्नमुख

प्रिया ने, पर, मेरी, भूपर किसी नदीतट के
छोटे-से अजाने गाँव में पुनः पलटके
किसी दीन घर में भी जन्म जो लिया हो कहीं
वह एक पल को भी मुझे भूली होगी नहीं
बाल्यावस्था से ही होगी पूजाअर्चना में लीन
फिर से पाने को मुझे, संचित किये अंतहीन
प्रेमसुधाराशि उर में, पाकर भी देह नयी
होगी स्मृति सँजोये पूर्वजन्म के सुहाग की
प्रातःकाल जाकर वह अकेली नदीतीर पर
गढ़कर शिवमूर्ति, बनाने को मुझे अपना वर
प्रार्थना करेगी उससे, संध्या-समय दीप जला
घाट पर पहुँच उसे चपल लहरियों पर बहा
कम्पितवक्ष गणना करेगी उस काल की
द्वार पर जब उसके लिए सजी होगी पालकी

एकाकी दाँड़ाय घाटे, एकदा सूक्षणे
आसिबे आमार घरे सत्रतनयने
चंदनचर्चितभाले, रक्तपटाम्बरे
उत्सवेर बाँसरीसंगीते, तार परे
सूदिने दूर्दिने, कल्याणकंकण करे
सीमंतसीमाय मंगलसिंदूरबिंदु,
गृहलक्ष्मी दु:खे-शूखे, पूर्णिमार इंदू
संसारेर समूद्रशियरे,

देवगण,
माझे माझे एइ स्वर्ग होइबे स्मरण
दूरस्वप्नसम - जबे कोनो अर्धरात्रे
सहसा हेरिबो जागि निर्मल शय्यातले
पड़ेछे चंद्रेर आलो, निद्रिता प्रेयसी,
लुंठित शिथिल बाहू, पड़िआछे खसि
ग्रंथि शरमेर; मृदू सौहागचुंबने
सचकिते जागि उठि गाढ़ आलिंगने
लताइबे वक्षे मोर; दक्षिण अनिल
आनिबे फूलेर गंध, जाग्रत कोकिल
गाहिबे सूदूर शाखे

अयि दीनहीना !
अश्रुआँखि दु:खातुरा जननी मलिना,
काँदिया उठेछे मोर चित्त तोर तरे
अयि मर्तभूमि, आजि बहूदिन परे
येमोनी विदाय दु:खे शुष्क दुई चोखे
अश्रुते पूरिलो, एमोनि ए स्वर्गलोके
अलस कल्पनाप्राय कोथाय मिलालो

चंदनचर्चितभाल, अरुण पाटाम्बर सजी
सलजमुख, बजती शहनाइयों में द्वार की
और एक दिन शुभ घड़ी में फिर धरेगी पाँव
नव वधू बन वह, मेरे घर में, छोड़ अपना गाँव
सुदिन-कुदिन में, चमकती हुई भाल पर
जगजलनिधि के, पूर्णेंदु की प्रभा लेकर
माँग में सिंदूर, मंगलकंकण से सजे हाथ
फिर वह गृहलक्ष्मी बन रहेगी सदा मेरे साथ

बीच-बीच में स्मृति मुझे स्वर्ग की भी आयेगी
दूरस्थ स्वप्न-सी, जब मेरी नींद टूट जायेगी
कभी आधी रात में, दिखेगा चाँद का आलोक
निद्रित प्रिया के पास आते बिना रोकटोक

शिथिल पड़ी बाँहें, खुली होगी ग्रंथि लज्जा की
चकित चुम्बन से सहसा जगी, दृष्टि कर बाँकी
गाढ़ आलिंगन से, सिमटकर वक्ष में मेरे
जब वह रहेगी मुझे बाहुलता से घेरे
दक्षिणवायु बहा फूलों की सुरभि लायेगी
जग कर दूर तरु की डालों में कोयल गायेगी

ओ दीनाहीना मर्त्यभूमि! बहुत दिन के बाद
रो पड़ा है मन मेरा आज तुझे करके याद
देख न पाए थे ज्यों नयन तुझे अश्रुभरे
विदा के समय, त्यों ही स्वर्ग अब दृगों से परे
लुप्त हुए कल्पित स्वप्न का-सा रूप धरता है
मन अब उसका विचार भी न करता है

छायाच्छवि, तव नीलाकाश, तव आलो
तव जनपूर्ण लोकालय, सिन्धुतीरे
सुदीर्घ बालुकातट, नील गिरिशिरे
शुभ्र हिमरेखा, तरूश्रेणीर माझारे
निःशब्द अरुणोदय, शून्य नदीपारे
अवनतमूखी संध्या – विंदू-अश्रुजले
यत प्रतिबिंब येनो दर्पणेर तले
पड़ेछे आसिया

हे जननी पुत्रहारा,
शेष विच्छेदेर दिने जे शोकाश्रुधारा
चक्षु होते झरि पड़ि तव मातृस्तने
करेछिलो अभीसिक्त, आजि एतोक्षण
से अश्रु शुकाये गेछे, तबू जानि मने,
यखनी फिरिबो पून तव निकेतने
तखनी दूखानि बाहू धरिबे आमाय
बाजिबे मंगलशंख; स्नेहेर छायाय
दूःखे-शूखे-भये-भरा प्रेमेर संसारे
तव गेहे, तव पुत्रकन्यार माझारे
आमारे लईबे चिरपरिचितसम-
तार परदिन होते शियरेते मम
सारा क्षण जागि रबे कंपमान प्राणे
शंकित अंतरे ऊर्ध्वे देवतार पाने
मेलिया करूण दृष्टि, चिंतित सदाई
'याहारे पेयेछि तारे कखनो हाराई'। ●

तेरा नीलाकाश, मृदुप्रकाश, जननिवास तेरा
सैकत सिंधुतीर, गिरिशिखर हिमघनों से घेरा
तरुओं के बीच से उभरता शांत अरुणोदय
नतमुखी संध्या नदी पार होती तम में लय
संचित कुल बिम्ब मानों एक अश्रुकण के
उतर आये हैं तल में मन के दर्पण के
पुत्र से वियुक्ता हे जननि! तेरा जिस दिन
पुत्र से हुआ था विच्छेद, जो मुख से मलिन
अश्रुधारा कर रही थी उरोजों का अभिषेक
शुष्क भी हो आज, है भरोसा, दूँगा माथा टेक
लौटकर जब तेरे चरणों पर, भूमि से उठा
बाँहों में भर लेगी मुझे प्रेम दे तू पहले-सा

मंगल शंखनाद में फिरूँगा पुनः अपने घर
स्नेहछायामयी सुखदुख से भरी पृथ्वी पर
जननी ! असंख्य अपने पुत्रपुत्रियों के बीच
लेगी तू मुझे भी तब निज मोदमंडली में खींच

उसके बाद तो फिर रखकर सिर पर निज कोमल कर
जागती रहेगी सदा चिंता-आशंका से भर
कम्पितप्राण, ममताकुल फिर-फिर नभ की ओर देख
विनय करेगी देवताओं से यही बस एक
बहुत दिनों बाद खोया पुत्र मिला मुझे, नाथ!
पाया जिसे उससे फिर न छूटे कभी मेरा साथ। •

दिनशेषे

दिनशेषे होये एलो, आँधारिलो धरनी
आर बेये काज नाई तरनी।
'हाँगो ए कादेर देशे
विदेशी नामिनु एसे'
ताहारे शुधानू हेसे येमनी-
अमनी कथा ना बोली
भरा घटे छलछलि
नतमूखे गेलो चलि तरुनी।
ए घाटे बाँधिबो मोर तरनी।

नामिछे नीरव छाया घनवनशयने,
ए देश लेगेछे भालो नयने।
स्थिर जले नाही साड़ा,
पातागुलि गतिहारा
पाखि यत घूमे सारा कानने-
शुधू ए सोनार साँझे
विजने पथेर माझे
कलस काँदिया बाजे काँकने।
ए देश लेगेछे भालो नयने।

झलिछे मेघेर आलो कनकेर त्रिशूले
देऊटि ज्वलिछे दूरे देउले।
श्वेत पाथरेते गड़ा,
पथखानी छाया-करा
छेये गेछे झरेपड़ा बकूले।

सारि सारि निकेतन
बेड़ा-देउया उपवन,
देखे पथिकेर मन आकूले।
देऊटि ज्वलिछे दूरे देउले।

राजार प्रासाद होते अति दूर वातासे
भासिछे पूरवीगीति आकाशे।
धरनी समूख पाने,
चले गेछे कोन खाने,
परान केनो के जाने उदासे।
भालो नाही लागे आर
आसा-याउया बार बार
बहूदूर दूराशार प्रवासे।
पूरवी रागिनी बाजे आकाशे।

कानने प्रासादचूड़े नेमे आसे रजनी,
आर बेये काज नाही तरनी।
यदि कोथा खूँजे पाई,
माथा राखिबार ठाँई
बेचाकेना फेले याई एखनि-
येखाने पथेर बाँके,
गेलो चलि नत आँखे
भरा घट लये काँखे तरुनी।
एई घाटे बाँधिबो मोर तरनी। ●

दिन का शेष

दिन डूबा, ढँक रहा अँधेरा गाँव को
बाँधूँगा मैं इसी घाट पर नाव को

पूछे भी मत, "नाविक ! तुम इस देश में
आये थकित कहाँ से दिन के शेष में ?"
जल छलकाती भरा कलश सिर पर धरे
विहँस चले नतमुख तरुणी, रुख मत करे
जगा रही नूपुर-ध्वनि तो रस-भाव को
बाँधूँगा मैं इसी घाट पर नाव को

उतरी खेतों में संध्या तन्द्रालसा
दूर राजप्रासाद बहुत लगता भला
सोये तृण-तरु, नदी-सलिल भी सो रहा
फिर भी तट पर जो कंकण-स्वर हो रहा
साँकल से ज्यों बाँध रहा है पाँव को
बाँधूँगा मैं इसी घाट पर नाव को

दिखता मंदिर-शिखर, शंख-ध्वनि आ रही
वायु गेह-स्मृति ला मन विकल बना रही
यह अलकों की गन्ध, चूड़ियों की खनक
ले जायेगी मुझे खींचकर गाँव तक
पा ही लूँगा दो गज धरती ठाँव को
बाँधूँगा मैं इसी घाट पर नाव को। •

आवर्तन

धूप आपनारे मिलाईते चाहे गंधे,
गंध से चाहे धूपेर रहिते जूड़े।
सूर आपनारे धरा दिते चाहे छंदे
छंद फिरिया छूटे जेते चाहे सूरे

भाव पेते चाय रूपेर माझारे अंग,
रूप पेते चाय भावेर माझारे छाड़ा।
असीम से चाहे सीमार निबिड़ संग,
सीमा चाय होते असीमेर माझे हारा

प्रलये सृजने ना जानि ए कार युक्ति,
भाव होते रूपे अविराम जाउया-आसा-
बंध फिरिते खूँजिया आपन मूक्ति,
मूक्ति माँगिछे बाँधनेर माझे बासा •

कर्तव्यग्रहण

के लइबे मोर कार्य, कहे संध्यारवि-
शुनिया जगत् रहे निरुत्तर छवि।
माटिर प्रदीप छिलो ; से कहिलो, 'श्वामी,
आमार येटूकू साध्य करिबो ता आमि।' •

आवर्तन

धूप चाहती मिलूँ गंध से, गंध चाहती धूप
सुर छंदों की, छंद सुरों की, चाहें विभा अनूप

भाव रूप पाने को इच्छुक जो मोहे संसार
और रूप की चाह-भाव बन खोलूँ मन के द्वार

है असीम सीमा को आकुल, सीमा की है चाह
बनूँ असीम, अनंत, अगोचर, अटल, अकूल, अथाह

किसकी थी वह युक्ति रच दिया जिसने विश्व विराट्
प्रलय सृजन की, सृजन प्रलय की जोहा करते बाट

बंध ढूँढता सदा मुक्ति पाने का मिले उपाय
और मुक्ति की चाह प्रेम के बंधन में बँध जाय •

कर्तव्यग्रहण

सांध्य-रवि बोले, 'मेरा स्थान लेगा कौन ?'
सुनकर यह जग में सभी नतशिर रहे मौन
मिट्टी का लघु दीप बोला, 'मैं लूँगा, श्रीमान!
यथाशक्ति तम से लड़ूँगा, निराश हों न'। •

असमाप्त

जीवने जत पूजा होलो ना सारा,
जानि हे, जानि ताऊ होय नि हारा।

ये फूल ना फूटिते झरे छे धरनी ते
ये नदी मरूपथे हारालो धारा,
जानि हे, जानि ताऊ होय नि हारा।

जीवने आज उ याहा रयेछे पिछे,
जानि हे, जानि ताऊ होय नि मिछे

आमार अनागत, आमार अनाहत
तोमार बीना तारे बाजिछे तारा
जानि हे, जानि ताऊ होय नि हारा। •

भक्तिभाजन

रथयात्रा, लोकारण्य, महा धूमधाम–
भक्तेरा लूटाये पथे करिछे प्रणाम
पथ भावे, 'आमि देव', रथ भावे, 'आमि'
मूर्ति भावे, 'आमि देव' – हासे अन्तर्यामी। •

असमाप्त

पट हुए बंद, पूजा हुई नहीं पूरी
जानता हूँ, जानता हूँ, वह है नहीं अधूरी

फूल जो धरती पर गिरा रहकर अनखिला
नदी जिसे सागर का कूल नहीं मिला

यात्रा जो लक्ष की मिटा न सकी दूरी
जानता हूँ, जानता हूँ, वह है नहीं अधूरी

पिछड़े जो, विफल नहीं उनका भी जीवन
क्या न मैं भी पिछड़, प्रभु-कृपा से गया कवि बन

महकेगी मेरी भी कृति ज्यों कस्तूरी
जानता हूँ, जानता हूँ, वह है नहीं अधूरी •

भक्तिभाजन

रथयात्रा में जुड़ी बड़ी भीड़ भक्तजन की
पथ में लोटते थे लोग सुध नहीं थी तन की
ध्वजा कहे, 'देव मैं हूँ, रहूँ सब से ऊँचे पर'
रथ कहे, 'देव मैं हूँ, सम्मुख सब रहे पसर'
मूर्ति कहे, 'देव मैं हूँ, पूजते हैं सब मुझे'
हँसते अंतर्यामी मन-ही-मन, सुन-सुनकर। •

याबार दिन

याबार दिने एई कथाटि बोले जेनो जाई–
या देखेछि, या पेयेछि, तूलना तार नाई।

एई ज्योति समूद्र माझे
ये शतदल पद्म राजे
तारि मधू पान करेछि, धन्य आमि ताई
याबार दिने एई कथाटि जानिये जेनो जाई।

विश्वरुपेर खेलाघरे कतई गेलेम खेले,
अपरूपके देखे गेलेम दूटी नयन मेले।
परश यारि जाए ना करा
सकल देहे दिलेन धरा,

एईखाने शेष करेन यदि शेष करे दिन ताई–
याबार बेला एई कथाटि जानिये जेनो जाई। •

कुटुंबिता

केरोसिन–शिखा बोले, 'माटिर प्रदीप,
भाई बोले डाको यदि देबो गला टीप।'
हेनकाले गगनेते उठिलेन चाँदा
केरोसिन बोलि उठे, एशो मोर दादा। •

जाने के दिन

जाने के दिन, विदा लूँगा मैं जग से यही कहकर
तुलना नहीं उसकी जो देखा और पाया मैंने दो दिन इस बाग में ठहर।

शत-शत रूपों में झिलमिला
कमल जो इस ज्योति-महासिंधु में खिला
धन्य हुआ हूँ मैं नित पीता हुआ, उसकी पँखुरियों से मधु जी भर।

विश्व खेलाघर में बहुत खेला
देखा है अरूप को भी दृग की पुतलियों में ला
जो था अगम, अनदिखा, अजाना
उसको भी शब्दों में बखाना
हूँ मैं आप्तकाम, आत्मतुष्ट आज, शेष भी हो मेरी जीवनयात्रा यहीं पर

जाने के दिन बिदा लूँगा मैं जग से यही कहकर
तुलना नहीं उसकी जो देखा और पाया मैंने दो दिन इस बाग में ठहर। •

कुटुंबिता

लालटेन बोली, 'सुन रे, मिट्टी के प्रदीप !
बहन यदि कहा मुझे, दूँगी गला टीप'
इसी क्षण चाँद उगा ज्योति-शर लिये
देख उसे बोली, 'दादाजी ! पधारिए'। •

शाहजहाँ

ए कथा जानिते तुमि भारत-ईश्वर शाहजहान,
काल श्रोते भेसे जाय जीवन यौवन धनमान।
शुधू तव अन्तरवेदना
चिरन्तन होए थाक, सम्राटेर छिलो ए साधना।
राजशक्ति वज्रसूकठिन
संध्या रक्तरागसम तंद्रातले होय होक लीन
केवल एकटी दीर्घश्वास
नित्य-उच्छवसित होय सकरूण करूक आकाश,
एई तव मने छिलो आश।
हीरामुक्तामाणिक्येर घटा
येन शून्य दिगंतेर इंद्रजाल इंद्रधनूछटा
याय यदि लुप्त होय याक,
शुधू थाक
ऐक विंदू नयनेर जल
कालेर कपोलतले शूभ्र समूज्वल
ए ताजमहल।

हाय उरे मानवहृदय,
बार बार
कारों पाने फिरे चाहिबार
नाई ये समय,
नाई नाई।

शाहजहाँ

जानते थे तुम भलीभाँति यह शाहजहाँ
प्रेमी-हृदय हे भारत-सम्राट !
काल-स्रोत में ठहर न पाते यहाँ
धन-मान, जीवन-यौवन के ठाट-बाट
तो भी अपने प्रेमाकुल हृदय की व्यथा
रखने को चिरंतन तुमने किया बहुत तप था
राज्य-शक्ति वज्र-सी कठिन
शून्य में विलीन हो भले ही सांध्य मेघों-सी चमककर चार दिन
फिर भी था तुम्हारा यह प्रयास
केवल एक तुम्हारा निःश्वास
सदा उच्छ्वसित हो बनाता रहे शोकमय समग्र दिशाकाश।
मन में थी सँजोई यही आश
हीरे-मोती-माणिकों की घटा
चमकाकर नभ में क्षणिक इन्द्रधनु-छटा
हो भी यदि लुप्त तो हो जाय, दुख नहीं
रहे बस वहीं का वहीं होकर अचल
काल के कपोल पर गया जो ढल
एक विन्दु अश्रुजल
शुभ्र, समुज्ज्वल
यह ताजमहल

हाय रे मानव-हृदय !
देखना जो चाहे कोई फिर-फिरकर बारबार
इसका नहीं है समय
नहीं कभी, नहीं कभी

जीवनेर खर श्रोते भासिछे सदाई
भूवनेर घाटे घाटे –
एक हाटे लउ बोझा, शून्य करे दाऊ अन्य हाटे।
दक्षिणेर मन्त्रगुन्जरणे
तव कुंजवने
वसंतेर माधवीमंजरी
येई क्षणे देय भरि
मालान्चेर चंचल अंचल
विदाय गोधूली आसे धूलाय छड़ाय छिन्न दल।
समय ये नाई
आबार शिशिररात्रे ताई
निकुंजे फूटाये तोल नव कून्दराजि
साजाइते हेमंतेर अश्रुभरा आनंदेर साजि
हाय रे हृदय
तोमार संचय
दिनान्ते निशान्ते शुधू पथप्रान्ते फेले येते होय।
नाई नाई, नाई ये समय।।

हे सम्राट, ताई तव शंकित हृदय
चेयेछिलो करिबारे समयेर हृदयहरन
सौन्दर्ये भूलाये
कंठे तार कि माला दूलाये
करिले वरण
रूपहीन मरणेर मृत्युहीन अपरूप साजे !
रहे ना ये
विलापेर अवकाश
बारो मास,

धारा में जीवन की डूबते जा रहे सभी
जग में घाट-घाट पर
बस एक हाट से उठाकर बोझ
ले जाकर पटकते उसे अन्य किसी हाट पर
दक्षिणी पवन के संचरण में
वासंती कुंजवन में
खोल निज दल को
करती हुई सुरभित लताओं के अंचल को
फूली जो माधवी मंजरी
नष्ट उसे करती शीघ्र ग्रीष्मपवन धूल से भरी
इतना भी नहीं है समय
करने वसंत का श्रृंगार
रोक सके हँसते हुए फूलों का विलय
फिर से निकुंज में खिला दे श्वेत कुंद कुसुम
फिर से नयी छवि से सजा दे वन के लता-द्रुम
हाय रे मानव-हृदय !
दिन भर जो कुछ भी तुमने रक्खा हो समेट
रात के आते ही होता पल में तम की भेंट
नहीं है, नहीं है, नहीं है समय।
रख ले बचा के यहाँ करे जो संचय

इसीलिए हे सम्राट ! तुम्हारा शोकाकुल मन
काल का करने अतिक्रमण
बंद हो गया है सौंदर्य के इस मणिगृह में
देकर अरूप को भी रूप का मोहक आवरण।
इसीलिये, हे सम्राट !
मोहित करने काल को पिन्हाया तुमने सुमन-हार
मरण के मृण्मय शरण-गृह को अमरता से दिया सँवार
देने दुखी मन को अवकाश सतत क्रंदन से

ताई तव अशांत क्रन्दने
चिर-मौन जाल दिये बेंधे दिलो कठिन बंधने !
ज्योत्स्नाराते निभृत मंदिरे
प्रेयसीर
ये नामे डाकिते धीरे धीरे
सेई काने-काने डाका रेखे गेले एईखाने
अनंतेर काने
प्रेमेर करूण कोमलता
फूटिलो ता
सौन्दर्येर पूष्पपूंज प्रशांत पाषाने ।।

हे सम्राट कवि,
एई तव हृदयेर छवि
एई नव नव मेघदूत
अपूर्व अद्भूत
छंदेगाने
उठियाछे अलक्षेर पाने
येथा तव विरहिनी प्रिया
रयेछे मिशिया
प्रभातेर अरूण-आभासे
क्लांतसंध्या दिगंतरे करूण निश्वासे
पूर्णिमाय देहहीन चामेलीर लावण्यविलासे
भासार अतीत तीरे
कांगालनयन येथा द्वार होते आसे फिरे फिरे।
तोमार सौंदर्यदूत यूग यूग धरि
एड़ाइया कालेर प्रहरि
चलियाछे वाक्यहारा एई वार्ता निया-
'भूलि नाई, भूलि नाई, भूलि नाई, प्रिया !'

बाँध दिया तुमने वह विरहाकुल मन अपना
प्रस्तरों के कठोर मौन इस बंधन से
ज्योत्स्ना-निशीथ में एकांत यमुना के तीर
होकर अधीर
जब-जब तुम पुकारते थे बिछुड़ी हुई प्रेयसी को
देख कर इसे ही ढाढ़स बँधता होगा जी को
पीड़ाकुल पुकारते थे नाम जो तुम महाराज !
पुष्पपुंज-सा सुकोमल, सरस कर गया है आज
पाषाण-खण्डों को भी, जड़कर जिसे अंतर में
प्रिया को तुम्हारी जो बसी जा दूर अम्बर में
व्यथा वे तुम्हारी हैं सुनाते मौन स्वर में।

हे सम्राट-कवि !
यह तुम्हारे अंतर की है छवि
अपूर्व, अद्भुत मेघदूत यही है तुम्हारा
चेतन बना प्रस्तरों के द्वारा
लिखा है यह काव्य तुमने
फूँककर विरही हृदय की विकल बाँसुरी को
प्रेम का सन्देश देने
बिछुड़ी हुई अपनी प्राणेश्वरी को
खो गयी है जो अरुणोदय के आभास में
सांध्य दिशाओं की करुण नीरव निःश्वास में
पूर्णिमा में चमेली के लावण्य-विलास में
और तुम्हारी वह विरहिणी प्रिया !
ओझल जिसने निज को श्वेत पट में कर लिया
नयन युगल बंद किये
बेसुध बन तुम्हारे लिये
सुनती सन्देश जो इस मौन दूत ने दिये
'भूला नहीं, भूला नहीं, भूला नहीं तुम्हें, प्रिये

चले गेछे तूमि आज
महाराज
राज्य तव स्वप्नसम गेछे छूटे
सिंहासन गेछे टूटे
तव सैन्यदल
वादेर चरणभरे धरणी करितो टलमल
ताहादेर स्मृति आज वायूभरे
उड़े जाय दिल्लिर पथेर धूलि-'परे।
वन्दीरा गाये ना गान
यमूना कल्लोल-साथे नहबत मिलाये ना तान।
तव पूरसून्दरीर नूपूरनिक्कन
भग्न प्रासादेर कोने
भरे गेछे झिल्लिस्वने
कान्दाय रे निशार गगन।
तबू उ तोमार दूत अमलिन
श्रान्ति-क्लान्ति-विहीन,
करि राज्य-भांगागड़ा,
तूच्छ करि जीवनमृत्यूर ऊठापड़ा,
यूग-यूगान्तरे कहितेछे
एक स्वरे
चिरविरहीर वाणी निया-
'भूलि नाई, भूलि नाई, भूलि नाई, प्रिया !

जा चुके हो तुम,
महाराज !
आज
स्वप्न-सी विलुप्त राज्यसत्ता है तुम्हारी अब
बंद हो चुके हैं राज-काज सब
सिंहासन भग्न हुआ
राजदंड पड़ा है अनछुआ
जिसके पदाघात से धरित्री टलमल होती थी कभी
आज उस सेना का नहीं है कहीं चिह्न भी
स्मृति आज उसकी उड़ती है धूल बनकर
दिल्ली की हवा में राजपथ पर
गाते नहीं बन्दीगण गान
नौबत नहीं गूँजती है यमुना के किनारों पर
लहरों से मिलाते हुए तान
अब तुम्हारी नर्तकियों के नूपुर की झंकार
आती नहीं है भग्न महल के झरोखों से
झिल्ली-रव बन नभ में करती हाहाकार
तब भी स्वर तुम्हारे दूत का हुआ न क्षीण
चिर-अमलिन, श्रान्तिहीन, क्लान्तिहीन
तुच्छ करता राजमुकुट-मणियों की चमक-दमक
तुच्छ करता जीवन और मृत्यु की उठापटक
कहता आ रहा यह सन्देश युग-युगान्तर से
चिर-विरही मन का तुम्हारा, मौन स्वर से
'रचा मैंने प्रेम का प्रतीक यह तुम्हारे लिये
भूला नहीं, भूला नहीं, भूला नहीं तुम्हें, प्रिये !'

मिथ्या कथा ! के बोले ये भूले नाई ?
के बोले रे खोलो नाई
स्मृतिर पिंजरद्वार ?
अतीतेर चिर-अस्त-अन्धकार
आजि उ हृदय तव रेखेछे बाँधिया
विस्मृतिर मुक्ति पथ दिया
आजि उ से होय नि बाहिर ?
समाधि मंदिर एक ठाँई रहे चिरस्थिर,
धरार धूलाय थाकि
मरणेर आवरणे मरणेर यत्ने राखे ढाकि।
जीवनेरे के राखिते पारे!
आकाशेर प्रति तारा डाकिछे ताहारे।
तार निमंत्रण लोके लोके
नव-नव पूर्वान्चले आलोके आलोके
स्मर्णेर ग्रंथि टूटे
से ये जाय छूटे
विश्वपथे बंधनविहीन।
महाराज, कोनो महाराज्य कोनोदिन
पारे नाई तोमारे धरिते
समूद्रस्तनित पृथ्वी, हे विराट्, तोमारे भरिते
नाहि पारे -
ताई ए धरारे
जीवन-उत्सव-शेषे दूई पाये ठेले
मृतपात्रेर मतों जाऊ फेले
तोमार कीर्तिर चेये तूमि ये महत्,
ताई तव जीवनेर रथ
पश्चाते फेलिया जाय कीर्तिर तोमार
बारम्बार
ताई
चिह्न तव पड़े आछे, तूमि हेथा नाई।

मिथ्या है, कौन कहता है कि भूले नहीं
अब भी तुम टिके हो वहीं
कौन कहता है खोल स्मृतियों का पिंजर-द्वार
चीरकर अतीत स्मृतियों का अंध अन्धकार
बाहर तुम आये नहीं विस्मृति के द्वार से
आज तक भी उस अँधेरे कारागार से
वह-समाधि-मंदिर तो अचल है अब भी भू पर
मृत्यु को सयत्न स्मृति के आवरण से ढँककर
गतिमय जीवन को पर कौन रोक पाया है
नभ का कोई तारा भी न जिसके हित पराया है
भेजकर पूर्व से आलोक नित्य जिसके लिये
व्योम ने है शून्य में सहस्रों द्वार खोल दिये
बाँधकर रखती कैसे, हो भी चिर-मनोहरा
सागर-परिवेष्टित उसे यह छोटी-सी धरा
इसीलिए तो, दोनों पाँवों से, हे सम्राट !
ठेल दिया था तुमने वैभव धरा का विराट्
चिर-उन्मुक्त, बैठकर प्रकाश-रथ में
किया प्रस्थान था अनंत व्योम-पथ में
अपनी कीर्ति से भी बड़े हो तुम, वह कभी
छू नहीं पाती है तुम्हारी क्षीण छाँह भी
गति से तुम्हारी बारबार
मान-मान जाती हार
रथ को तुम्हारे वह पकड़ नहीं पाती है
काल के पथ पर सदा पीछे छूट जाती है
प्रेम का प्रतीक तो खड़ा है भूमि पर वह आज
पर तुम नहीं हो वहाँ, महाराज !

ये प्रेम पथेर मध्ये पेते छिलो निज सिंहासन
चलिते चालाते नाहि जाने
तार विलासेर संभाषण
पथेर धूलार मतो जड़ाये धरेछे तव पाये –
दियेछो ता धूलिरे फिराये
सेई तव पश्चातेर पदधूलि–'परे
तव चित्त होते वायूभरे
कखनो सहसा
उड़े पड़ेछिलो बीज जीवनेर माला हते खसा
तूमि चले गेछे दूरे,
सेई बीज अमर अंकूरे
उठेछे अम्बर पाने,
कहिछे गंभीर गाने
यत दूर चाई
नाई नाई से पथिक नाई।
प्रिया तारे राखीलो ना, राज्य तारे छेड़े दिलो पथ,
रूधिलो ना समूद्र पर्वत।
आजि तार रथ
चलिया छे रात्रिर आह्वाने
नक्षत्रेर गाने
प्रभातेर सिंहद्वार–पाने।
ताई
स्मृति भारे आमि पड़े आछि,
भारमुक्त से एखाने नाई'। •

जिस प्रेम में नहीं हो गति कभी तिल भर
पाकर सिंहासन पड़ा हो एक स्थल पर
कैसे बाँध पाता वह तुम्हारे मुक्त मन को
मुक्त हो गए तुम उसे सौंपकर भुवन को
जीवन में जिसके हाथ कभी हाथ में थामे
लिपटी रही जो पुष्पमाला सदृश ग्रीवा में
सौरभ उसी पुष्पमाला का यह ताजमहल
पूँजीभूत यश प्रेम के प्रकाश का धवल
शोभित कर रहा है अपनी द्युति से धरा का अंचल
उन्नत-शिर खड़ा है फैलाकर बाँहें
पर वे कितना भी चाहें
पकड़ न पातीं उसे जिसने प्रिया-स्मरण-हेतु
रचा था यह प्रणय-सेतु
रोक न पाया जिसे प्रेम का भी यह उपहार
मुक्त हुआ आप करके अपनी प्रिया का श्रृंगार
प्रेयसी ही नहीं, छूटा जिससे साम्राज्य भी
सागर हो कि पर्वत, रोक नहीं पाये कोई जिसका पथ
रजनी का पाकर आमंत्रण
दूर-दूर नक्षत्रों की ओर, लाँघ धरती का छोर
तारों के संगीत से बेसुध बन
कर गया जो नभ के ज्योति-द्वार में प्रवेश
छोड़कर अपना देश
सौंप कर प्रेम की निशानी यह भुवन को
मुक्त कर गया वह इस बन्धन से भी मन को
और यह प्रतीक उसके प्रेमाकुल हृदय का
मृत्यु पर प्रेम की विजय का
भूमि पर खड़ा है अमर प्रेम की कहानी ले
जग में सौंदर्य की अमिट निशानी ले
कहता हुआ, 'रहूँगा मैं चिर-दिन
काल की प्रचंडता में अमलिन
विरही हृदय की व्यथा का भार ढोता
मुक्त हुआ प्रेमी पर मैं मुक्त कैसे होता !' •

एकदा तूमि प्रिये

एकदा तूमि, प्रिये, आमारि ए तरुमूले
बसेछो फूलसाजे से कथा ये गेछे भूले।।

सेथा ये बहे नदी निरवधि से भोले नि
तारि ये सोते आँका बाँका बाँका तव वेणी
तोमारि पदरेखा आछे लेखा तारि कूले।
आजि कि सबई फाँकी-से कथा कि गेछे भूले।।

गेंथेछो ये रागिनी एकाकिनी दिने दिने
आजि उ जाय ब्येपे केंपे केंपे तृणे तृणे।
गाँथिते ये आँचले छायातले फूलमाला
ताहारि परशन हरसन सुधा-ढाला
फागुन आजो ये रे खूँजे फेरे चाँपाफूले।
आजि कि सबई फाँकी- से कथा कि गेछे भूले।। •

निजेर उ साधारणेर

चन्द्र कहे, 'विश्वे आलो दियेछि छड़ाये
कलंक या आछे ताहा आछे मोर गाये'। •

एक दिन तुम प्रिये

एक दिन तुम प्रिये, अलकों में सजे चंपा-फूल
बैठी थी मेरे तरुतले, वह मिलन क्या गयी भूल !

बहती थी यहाँ जो नदी निरवधि
नहीं क्या तुमको सुधि !
उसीने तुम्हारी आँकी, वेणी बाँकी-बाँकी
तुम्हारी पदरेखा, गति-लेखा,
अब भी है उसके कूल
आज क्या छल है सभी !
वह मिलन क्या गयी भूल !

गायी नित जो रागिनी, एकाकिनी, वन-वन में,
आज भी व्याप रही, काँप रही तृण-तृण में
गूँथी थी आँचल में, बैठी छायातल में जो फूलमाला
तुम्हारा आज भी वह परस, सरस, सुधारस ढाला
फागुन ढूँढ़ता फिर रहा चंपई फूलों पर झुक, झूल
आज क्या छल है सभी !
वह मिलन क्या गयी भूल ! •

अपना और संसार का

चाँद बोला, 'बाँट दिया विश्व में प्रकाश
कालिमा कलंक की टिका ली अपने पास'। •

आत्मा की अमरता

राहुर मतन मृत्यू
शूधू फेले छाया
पारे ना करिते ग्रास जीवनेर स्वर्गीय अमृत
जड़ेर कवले
ए कथा निश्चित मने जानि।

प्रेमेर असीम मूल्य
सम्पूर्ण वंचना करि लवे
हेन दस्यु नाई गुप्त
निखिलेर गुहा–गह्वरेते
ए कथा निश्चित मने जानि।

सब चेये सत्य करे पेयेछिनू यारे
सब चेये मिथ्या छिलो तारि माझे छद्मवेश धरि,
अस्तित्वेर ए कलंक कभू
सहितो ना विश्वेर विधान
ए कथा निश्चित मने जानि।

सबकिदु चलियाछे निरंतर परिवर्तवेगे
सेई तो कालेर धर्म।
मृत्यु देखा देय एसे एकान्तेई अपरिवर्तने,
ए विश्वे ताई से सत्य नहे
ए कथा निश्चित मने जानि।

विश्वेरे ये जेनेछिलो आछे ब'ले
सेई तार आमि
अस्तित्वेर साक्षी सेई
परम आमिर सत्ये सत्य तार
ए कथा निश्चित मने जानि। ●

आत्मा की अमरता

कितना भी प्रयत्न करे ढँककर इसे मृत्यु अपनी
राहू के समान घनघोर काली छाया से
छीन न सकेगी कभी जीवन का अमृत दिव्य
वह असहाय, जड़, जीर्ण-शीर्ण काया से
यह बात सुनिश्चित मन में जानता हूँ

सामर्थ्य नहीं है किसी में भी जो प्रेम के
चिर-अमूल्य इस अमृत कण को नष्ट कर सके
छले या चुरा ले इसे, दस्यु नहीं ऐसा कोई
अम्बर में, भूमि पर, विवर में सिन्धुतल के
यह बात सुनिश्चित मन में जानता हूँ

पाया जिसे सब से अधिक सत्य समझ जीवन का
क्षद्म वेश में असत्य सब से अधिक था वहीं
लगे अस्तित्व के कृतित्व पर कलंक ऐसा
सृष्टि-रचना में सह्य यह विडंबना नहीं
यह बात सुनिश्चित मन में जानता हूँ

हो रहे हैं यहाँ परिवर्तित सभी क्षण क्षण में
धर्म है, नियम है अटल यही काल का
संभव नहीं, मृत्यु ही अपरिवर्तित हो एक यहाँ
जीवन सदा को रहे ग्रास उसके गाल का
यह बात सुनिश्चित मन में जानता हूँ

साक्ष्य देकर ही जिसका विश्व को चिन्हाया जाये
'मैं' यह कभी विश्व-निर्माता से न न्यारा है
चरम अस्तित्व सत्य का भी इसी 'मैं' से जुड़ा
शाश्वत यह जड़ता के तिमिर से नहीं हारा है
यह बात सुनिश्चित मन में जानता हूँ। •

जन्मदिन

आमार ए जन्मदिन माझे आमि हारा,
आमि चाही बन्धूजन यारा
ताहादेर हातेर परसे
मर्त्येर अंतिम प्रीतिरसे
निए जाबो जीवनेर चरम प्रसाद
निए जाबो मानूषेर शेष आशीर्वाद
शून्य झूली आजिके आमार
दियेछि उजाड़ करि
याहा किछू आछिलो दिबार
प्रतिदान यदि किछू पायी
किछू स्नेह, किछू क्षमा
तबे ताहा संगे निये याई
पारेर खेयाय जाबो जबे
भाषाहीन शेषेर उत्सवे। •

असंभव–भालो

यथासाध्य भालो बोले, 'उगो आसे भालो,
कोन स्वर्गपूरी तूमि करे थाको आलो ?'
आसे–भालो केंदे कहे, 'आमि थाकि हाय
अकर्मण्य दाम्भिकेर अक्षम ईर्षाय'। •

जन्मदिन

आज मैं थकाहारा
जन्मदिन के आयोजन की इस सन्निधि द्वारा
चाहता हूँ पाना बंधुजनों के कर का मृदु परस
मर्त्यभू का अंतिम प्राप्तव्य प्रीति-रस
जीवन का चरम प्रसाद
मानवों का अंतिम आशीर्वाद
मेरी यात्रा पूरी हो ली
जा रहा हूँ मैं आज रिक्त कर अपनी झोली
जो कुछ भी देने योग्य लाया था अपने साथ
लुटा चुका हूँ उसे खुले हाथ
प्रतिदान में कुछ स्नेह, कुछ क्षमा यदि पाऊँ
पार जाने की नौका पर जब चढ़ूँ
शेष के मौन उत्सव में उसे साथ लिये जाऊँ। •

असंभव-अच्छा

यथासाध्य अच्छा बोला, 'और अच्छा, भाई !
रहकर किस नंदन में ज्योति जगमगायी ?'
और अच्छा रोकर बोला, 'हाय, क्या कहूँ !
अकर्मण्य, दम्भी की अक्षम ईर्ष्या में रहूँ '। •

जीवन–सत्य

रूपनारानेर कूले
जेगे उठिलाम
जानिलाम ए जगत
स्वप्न नय।
रक्तेर अक्षरे देखिलाम,
आपनार रूप,
चिनिलाम आपनारे
आघाते आघाते
वेदनाय वेदनाय;
सत्य ये कठिन,
कठिनेरे भालोबासिलाम,
से कखनो करे ना बंचना।
आमृत्यूर दुःखेर तपस्या ए जीवन,
सत्येर दारुण मूल्य लाभ करिबारे,
मृत्यूर सकल देना शोध करे दिते। ●

जीवन–सत्य

रूपनारान के किनारे
मैंने लोचन उघाड़े
जाना कि यह संसार
नहीं है कोरा स्वप्न का विस्तार।
इसमें रक्त के अक्षरों में लिखा
अपना रूप भी दिखा,
पहिचाना स्वयं को चोट पर चोट खाके
नित नयी वेदना पा के।
सत्य जो कठिन है
उसी कठिन को मैंने किया है प्यार
छलता नहीं जो कभी
स्रष्टा से कराता आँखें चार।
आमरण दुःख की तपस्या है यह जीवन,
सत्य का दारुण मूल्य पाने के लिये
मृत्यु का चुकाना होता ऋण। ●

शान्ति–पारावार

समूखे शान्तिपारावार
भासाऊ तरनी हे कर्णधार।

तूमि होबे चिरसाथी,
लउ लउ हर क्रोड़ पाति
असीमिर पथे ज्वलिबे ज्योति ध्रुवतारकार
मुक्तिदाता, तोमार क्षमा तोमार दया
होबे चिरपाथेय चिरयात्रार

होबे एनो मर्त्यैर बंधन क्षय
विराट् विश्व बाहू मेलि लय,
पाय अंतरे निर्भय परिचय
महाअजानार। ●

शान्ति-पारावार

सम्मुख है शान्ति-पारावार
डुबा दो तरणि, हे कर्णधार!

तुम्ही तो हो, प्रभु ! मेरे चिर-सहचर
ले चलो मुझे अपनी बाँहों में भर
दीप्त करो क्षमा-दया संबल देकर
असीम की यात्रा का अन्धकार

हो जिससे मर्त्य के बंधनों का क्षय
मिलूँ विराट विश्व से बन प्रेम की लय
अज्ञात की वह प्रतीति दो, करुणामय !
निर्भय तम गहन करूँ पार !

सम्मुख है शान्ति-पारावार
डुबा दो तरणि, हे कर्णधार ! •

अशेष

आबार आह्वान
यत किछु छिलो सांग तो करेछी आज
दीर्घ दिनमान।
जागाये माधवीवन चले गेछे बहु क्षण
प्रत्यूष नविन,
प्रखर पिपाशा हानि पुष्पेर शिशिर टानी
गेछे मध्यदिन,
माठेर पश्चिम शेषे अपराह्न म्लान हेसे
होलो अवसान,
परपारे उत्तरिते पा दियेछी तरनीते
तबूउ अहवान?

नामे संध्या तंद्रालसा सोनार आँचलखसा
हाथे दीपशिखा –
दिनेर कल्लोल'पर टानि दिलो झिल्लिस्वर
घन यवनिका।
उ पारेर कालो कूले कालि घनाइया तूले
निशार कालिमा,
गाढ़ से तिमिर-तले चक्षू कोथा डूबे चले-
नाहि पाय सीमा।
नयनपल्लव- 'परे स्वप्न जड़ाइया धरे
थेमे जाय गान,
क्लांति टाने अंग मम प्रियार मिनति सम –
एखनो आह्वान ?

अशेष

कार्य जो दिए थे कभी, पूरा कर चुका मैं सभी,
दिन-भर खट भूत के समान
मुक्ति को विकल हैं प्राण, डूब रहा अंशुमान,
अब भी यह तुम्हारा आह्वान !

सुप्त मधुबन को जगा, उषा हो चुकी है विदा,
ज्योतिमय बनाती दिशाकाश
फूलों का चुरा पराग, मध्य दिन भी गया भाग,
ओस के कणों से बुझा प्यास,
हाट के पश्चिम कुवेश, शेष दिन हो गया शेष
मैंने निज विराम-समय जान,
छोड़ पार तक आ नाव, तट पर धरे ही हैं पाँव
अब भी तुम्हारा यह आह्वान!

संध्या तन्द्रा से भरी, स्वर्ण-वसन में उतरी
कर में रवि का लिए प्रदीप
कोलाहल गया ठहर, गूँज रहा झिल्ली-स्वर
मौन हुए घरों के समीप
तमने नभ लिया घेर, दृष्टि जिधर भी लूँ फेर,
कुछ भी दिखता न आर-पार
निशि का फैला दुकूल, ढँकता सरिता के कूल
छाया दिशाओं में अंधकार
पूरे कर दिन के काम, आपस में हाथ थाम
फिरते कृषक गाते हुए गान
निद्राकुल, क्लांत, अलस, सुनता प्रिया-विनय सदृश
अब भी मैं तुम्हारा आह्वान !

रे मोहिनी, रे निष्ठुरा, उरे रक्त-लोभातुरा
कठोर स्वामिनी
दिन मोर दीनू तोरे शेष नीते चास ह' रे
आमार यामिनी ?
जगते सबारइ आछे संसार सीमार काछे
कोनोखाने शेष –
केनो आसे मर्मच्छेदि सकल समाप्ति भेदि
तोमार आदेश।
विश्वजोड़ा अंधकार सकलेरइ आपनार
ऐकलार स्थान –
कोथा होते तारा माझे विद्युतेर मतो बाजे
तोमार आह्वान।।

दक्षिण समुद्रपारे तोमार प्रासाददुवारे
हे जाग्रत रानी,
बाजे ना कि संध्याकाले शांतसुरे क्लांततालें
बैराग्येर वानी ?
सेथाय कि मूक वने घूमाय ना पाखीगने
आँधार शाखाय ?
तारागुलि हर्म्य-शीरे उठे ना कि धीरे धीरे
निःशब्द पाखाय ?
लताबितानेर तले बिछाय ना पूष्पदले
निभृत शयान ?
हे अश्रांत शांतिहीन शेष होए गेलो दिन –
एखनो आह्वान ?

ओ मेरी स्वामिनी निठुर ! ओ री ! रक्त लोभातुर,
निशि में दो सभी को विराम
कर्म दो मुझे ही घोर, जिस पर चले न जोर
सेवा में रहूँ मैं आठों याम,
दिए बिना पल विराम, निशि में भी मुझी से काम,
नहीं जिससे मुक्ति का उपाय
दिनभर रख सेवा-लीन, मेरी रात भी लो छीन
यही है तुम्हारा, देवि ! न्याय !

जग में कोटि-कोटि दास, खड़े चरणों के पास
पाते हैं तुम्हारी कृपा-कोर
कर मुझी पर दृष्टि वाम, दिया है क्यों ऐसा काम
जिसका नहीं कोई ओर-छोर !
करते सुख-शान्ति भोग, मुक्त निज घरों में लोग
होता ज्यों ही दिन का अवसान
आता भरे जग के पार, मुझ ही अकेले के द्वार
तड़ित्-सा अब भी यह आह्वान !

दक्षिण सागर के पार, तुम्हारे भवन के द्वार
हे महा-महिमामयी रानी !
संध्या-वेला में क्लांत, गूँजती नहीं है शांत
क्या कभी विरागमयी वाणी !
दिन-भर के थके फूल, तरु-पल्लवों में झूल
सोते नहीं होती जब रात !
वहाँ भवनों के पास, उठती न क्या सहास
सेवा-मुक्त तारकों की पांत !
पंछी डालियों से लगे, निशि में भी रहते जगे
छेड़ते निरंतर नयी तान !
हे कठोर ! हे निर्दयी ! दिन की अवधि बीत गयी
अब-भी यह तुम्हारा आह्वान !

रहिलो रहिलो तबे- आमार आपन सबे
आमार निराला,
मोर संध्यादीपालोक पथ-चाउया दूटि चोख,
यत्नेगाँथा माला।
खेयातरी याक बये गृह-फेरा लोक लये
उ पारेर ग्रामे,
तृतियार क्षीण शशि धीरे पड़े याक खशि
कुटिरेर वामे।
रात्रि मोर, शांति मोर, रहिलो स्वप्नेर घोर,
सुस्निग्ध निर्वाण-
आबार चलिनू फिरे बहि क्लांत नतशिरे
तोमार आह्वान।।

बोलो तबे की बाजाबो फूल दिये की साजाबो,
तब द्वारे आज
रक्त दिये की लिखिबो, प्रान दिये की शिखिबो,
की करिबो काज ?
यदि आँखि पड़े ढुले श्लथ हस्त यदि भूले
पूर्व निपुनता
वक्षे नाहि पाई बल चक्षे यदि आसे जल
बेधे जाय कथा
चेयो नाको घृणाभरे कोरो नाको अनादरे
मोरे अपमान-
मने रेखो हे निदये मेनेछिनू असमये
तोमार आह्वान।।

नष्ट हो चुके हैं अब, मुझे तो प्रिय थे जो सब
मेरा घर, एकांत, मेरी शान्ति,
मेरा यत्न-ग्रथित हार, मेरे नयन भरे प्यार
मेरे सांध्य - दीपकों की कान्ति
चंद्र तृतीया का क्षीण, थकित-वदन, ज्योति-हीन
ढल रहा कुटीर की ले आड़
श्रमिक मुक्त चढ़े नाव, लौट रहे अपने गाँव
हाट-बाट हो रहे उजाड़
मेरी शान्तिभरी रात, अब है स्वप्न की-सी बात
नत-मुख छायामूर्ति के समान,
हारा-थका, सब कुछ गँवा, मैं तो फिर लौट रहा
सिर पर लिए तुम्हारा आह्वान !

बोलो तब मैं क्या बजाऊँ ! फूलों से कैसे सजाऊँ !
देवि ! अब तुम्हारा सिंह-द्वार !
रक्त से लिखूँ क्या गीत, प्राण दे करूँ क्या प्रीत
सेवा भी करूँ मैं किस प्रकार !
आँखों में पड़ी हो धूल, कम्पित कर करें जो भूल
पहले-सी निपुणता हो न शेष
बाँहों में रहे न बल, आँखों से बहे जो जल,
पूर्व शक्ति का मिले न लेश
घृणा-रोष से भरकर, कर देना न अनादर
मेरी रचना को तुच्छ मान
रखना ध्यान में यह सदा, असमय था मान लिया
देवि ! मैंने तुम्हारा आह्वान !

सेवक आमार मतो रयेछे सहस्रशत
तोमार दुयारे –
ताहार पेयेछे छुटि, घूमाय सकले जुटि
पथेर दू धारे।
शुधू आमि तोरे सेवि बिदाय पाई ने देवी,
डाको क्षने क्षने।
बेछे नीले आमरेइ दुरुह सौभाग्य सेइ
बहि प्राणपने।
सेई गर्वे जागी रबो सारा रात्रि दुवारे तव
अनिद्रनयान –
सेई गर्वे कंठे मम बहि बर-माल्य-सम
तोमार आह्वान।।

होबे, होबे, होबे जय- हे देवी, करि ने भय,
होबे आमि जयी।
तोमार आह्वान-वानी सफल करिबो रानी,
हे महिमामयी।
काँपीबे ना क्लांत कर, भाँगिबे ना कंठस्वर
टूटिबे ना बीना –
नवीन प्रभात लागि दीर्घ रात्रि रबो जागि,
दीप निबिबे ना।
कर्मभार नव प्राते नव सेवकेर हाते
करि जाबो दान –
मोर शेष कंठस्वरे जाइबो घोषणा करे
तोमार आह्वान।। ●

सेवक मुझसे अपार, रहते जो तुम्हारे द्वार
गिना भी न जाए जिनका नाम
निशि में हो कार्य मुक्त, होते न फिर से नियुक्त
सोते सभी घर जा पूर्णकाम
जाने क्या मुझी में देख, उनमें से मुझे ही एक
फिर-फिर तुम रही हो पुकार
क्यों न पा यह भाग्य बड़ा, द्वार पर रहूँ मैं खड़ा
श्रम से न मानूँ कभी हार ?
सब में से मुझे चुन कर, सेवा का दिया अवसर
भूलूँ कैसे यह कृपा विशेष,
इसी गर्व से जागृत, कर्मरत रहूँगा सतत
निशि में भी न होगा मुझे क्लेश
मुझे निजी दास बना, दिया जो यह स्नेह घना
अपना सौभाग्य इसे मान
वर-माला सदृश क्षण-क्षण, ढोऊँगा अनिद्र-नयन
देवि ! तुम्हारा यह आह्वान !

होगी जय, होगी जय, हे देवि ! करो न भय
निश्चय ही होगी मेरी जीत
तुम्हारी आह्वान-वाणी, सफल करूँगा, रानी !
रचकर नित नए-नए गीत
काँपेंगे न क्लांत कर, टूटेगा न कंठ-स्वर
वीणा-ध्वनि होगी नहीं मंद
होने तक नव-प्रभात, जाग बिता दूँगा रात
बाँधता सुरों में नए छंद
नए भृत्य को पाकर, प्रातः नयी लय से भर
सौंप दूँगा जय का यह निशान
मेरा शेष कंठ-स्वर, जायेगा घोषणा कर
देवि ! यह तुम्हारा आह्वान •

मूखपाने चेये देखि

मूखपाने चेये देखि, भय होय मने-
फिरेछो कि फेरो नाई बूझिबो केमोने।।

आसन दियेछि पाति,
मालिका रेखेछि गाँथि,
बिफल होलो कि ताहा भावि खने खने।।

गोधूलि लगने पाखि फिरे आसे नीड़े,
धाने भरा तरिखानि घाटे एसे भिड़े।।

आजो कि खोँजार शेषे
फेरो नि आपन देशे।
विरामबिहीन तृषा जले कि नयने।।

मूखपाने चेये देखि, भय होय मने-
फिरेछो कि फेरो नाई बूझिबो केमोने।। ●

मुख की छवि तो देखूँ

मुख की छवि तो देखूँ
मुक्ति हो भय से
आये कि न आये, बूझूँ यह कैसे!
आसन बिछा दिया है,
गलहार सज लिया है
विफल हो न यह सारा, मन डोले संशय से

साँझ ढले पंछी नीड़ों में फिर आये
घाट पर लगीं आकर धानभरी नौकाएँ

आज पूरे भी हुए सपने
फिरो न देश अपने
विराम-विहीन तृष्णा गयी न हृदय से

मुख की छवि तो देखूँ
मुक्ति हो भय से
आये कि न आये, बूझूँ यह कैसे! •

जुगल किशोर जैथलिया

जन्म : २ अक्टूबर १९३७ ई.
छोटीखाटू, जिला- नागौर, राजस्थान
शिक्षा : एम.काम., एल-एल.बी., एडवोकेट
रुचि : साहित्य, समाजसेवा एवं राजनीति

सम्पादक :

१) विष्णुकान्त शास्त्री : चुनी हुई रचनाएँ : दो खंड (२००३)

२) कन्हैयालाल सेठिया समग्र : चार खंड (२००४-०७)

३) श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय, राजस्थान परिषद एवं श्री छोटीखाटू हिन्दी पुस्तकालय की ५० से अधिक महत्वपूर्ण एवं संग्रहणीय स्मारिकाओं का सम्पादन एवं ६ साहित्यिक ग्रन्थों का सह-सम्पादन।

सम्मान : विभिन्न साहित्यिक एवं सामाजिक संस्थाओं द्वारा समय-समय पर पुरस्कृत एवं सम्मानित

साहित्यिक, सामाजिक एवं राजनैतिक गतिविधियां :

श्री छोटीखाटू हिन्दी पुस्तकालय के संस्थापक।

श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय के पूर्व अध्यक्ष एवं मंत्री।

राजस्थान परिषद के संस्थापकों में से एक एवं वर्तमान में उपाध्यक्ष।

भारतीय जनता पार्टी, प.बंगाल के उपाध्यक्ष एवं राष्ट्रीय कार्यसमिति के विशेष आमंत्रित सदस्य।

बाल्यकाल से ही राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के स्वयंसेवक।

नेशनल इन्श्योरेंस एवं नेशनल बुक ट्रस्ट के पूर्व निदेशक।

कोलकाता की विभिन्न साहित्यिक-सामाजिक संस्थाओं की कार्यसमिति के सदस्य।

सम्पर्क : ४२, कालीकृष्ण टैगोर स्ट्रीट, कोलकाता-७
मोबाइल: ०९८३०३४१७४७, दूरभाष: (०३३) २२५९०९३०

•

महावीर प्रसाद बजाज

जन्म : १० नवम्बर १९५२ ई.
छोटीखाटू, जिला- नागौर, राजस्थान
शिक्षा : बी.एस सी. (गणित)
रुचि : साहित्य एवं समाजसेवा

सम्पादक :

कर्मयोग का पथिक : जुगल किशोर जैथलिया अभिनन्दन ग्रन्थ

सहसम्पादक :

कन्हैयालाल सेठिया समग्र (चार खंड), विष्णुकान्त शास्त्री अमृत महोत्सव अभिनन्दन ग्रन्थ, लोकसेवक की जीवन-यात्रा एवं अन्य।

साहित्यिक एवं सामाजिक गतिविधियां :

श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय के मंत्री।

श्री छोटीखाटू हिन्दी पुस्तकालय के पूर्व उपाध्यक्ष एवं साहित्य मंत्री।

सम्पर्क : ४२, कालीकृष्ण टैगोर स्ट्रीट, कोलकाता-७

नहीं विराम लिया है
ज्यों-ज्यों दिवस ढल रहा, मैंने चलना तेज किया है
तन की इस अनंत घाटी में
क्या यदि चले तेज या धीमे!
[illegible]
मैंने बना दिया है
ज्ञान-भक्ति की लेकर गागर
जो युग-युग से बैठे पथ पर
श्रद्धा की अंजलि फैलाकर
उनसे अमृत पिया है
महाशून्य में लय भी होकर
क्या न बचा [illegible] सब खोकर
मैंने जो [illegible] होकर
जीवन यहाँ जिया है!
नहीं विराम लिया है
ज्यों-ज्यों दिवस ढल रहा मैंने चलना तेज किया है